Registration No. V-36244/2008-09 **ISSN :- 2348-0076**

JIFE Impact Factor – 5.21

Samajiki Sandarsh

A Multidisciplinary Quarterly International Peer Reviewed Referred Research Journal

Editor
Dr. Kamlesh Kumar Singh
Assistant Professor
Department of Sociology
Pt. D.D.U. Govt. Girls P.G. College
Sevapuri, Varanasi

Volume - XIII **No. - 1** **(Jan. – Mar. 2025)**

Published by
Future Fact Society
Varanasi (U.P.) India

Samajiki Sandarsh - *A Refereed Journal, Published by : Quarterly*

Correspondence Address :
B 31/13-6, Malviya Kunj
(Behind Khaneja Watch Co.)
Lanka, Varanasi, (U.P.)
Pin. - 221 005
Mobile No. :- 09336924396
Email- samajikisandarsh@gmail.com

Note :-

The views expressed in the journal "Samajiki Sandarsh" are not necessarily the views of editorial board or publisher. Neither any member of the editorial board nor publisher can in anyway be held responsible for the views and authenticity of the articles, reports or research findings. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Managing Editor
Avinash Kumar Gupta

©Publisher

ISSN : 2348-0076

Printed by
Interface Computer, B 31/13-6, Malviya Kunj, Lanka, Varanasi-221005 (U.P.)

ADVISORY BOARD

- **Prof. T. N. Singh,** United Nations Professor of Plant Physiology, Department of Plant Sciences, University of Gondar, Ethiopia (Africa)
- **Prof. Sarswati Singh**, Department of Sanskrit, Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Diwakar Pradhan,** Professor in Nepali, Head, Deptt. of Indian Languages Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Prof. S.K. Bhatnagar,** School for Legal Studies, BBAU, Lucknow
- **Prof. Suresh Prasad Rai,** Former-Head, Department of English, S.Sinha College Aurangabad, Bihar
- **Left. Dr. Munna Singh,** Head, Physical Education Department, Handia P.G. College, Handia, Allahabad, U.P.
- **Dr. Bindeshwar Prasad Mandal,** Head, Department of Sociology, B.N. College, Patna University, Patna (Bihar)
- **Dr. Achchelal Yadav,** Head, Physical Education Department, PDU Rajkiya P.G.College, Saidpur, Ghazipur, U.P.

EDITORIAL BOARD

- **Dr. Sanjay Singh,** Department of Plant Science, University of Gondar, Ethiopia (Africa)
- **Dr. Diwakar Pradhan,** Professor in Nepali, Head, Deptt. of Indian Languages Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Nagendra Kumar Singh,** Professor, Department of Journalism & Mass Communication, Mahatma Gandhi Kashi Vidyapith, Varanasi.
- **Dr. Manish Arora,** Associate Professor, Faculty of Visual Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Somu Singh,** Assistant Professor, Faculty of Education, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Surjoday Bhattacharya,** Assistant Professor, Government Degree College, Pratapgarh U P
- **Dr. Upasana Ray,** Associate Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi
- **Dr. Krishna Kant Tripathi,** Assistant Professor, Deptt. of Education, Central University of Mijoram, Mijoram
- **Dr. Urjaswita Singh,** Assistant Professor, Department of Economics, M.G. Kashi Vidyapith, Varanasi.
- **Dr. Santosh Kumar Singh,** Assistant Professor, P.G. Department of Psychology, J.P. University. Chapra
- **Dr. Ramkirti Singh,** Assistant Professor, Department of Psychology, Gorakhpur University, Gorakhpur

- **Dr. Girish Kumar Tiwari,** Assistant Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi
- **Dr. Ranjeet Kumar Ranjan,** Assistant Professor, Department of Psychology, J.P. College, Narayanpur, Bihar
- **Dr. Paromita Chaubey,** Faculty of Education, Banaras Hindu University, Varanasi

ଔ

EDITOR'S NOTE

It is a great honour to me to extend my warm greetings and welcome you all to the journal, **Samajiki Sandarsh,** a refereed journal of multi disciplinary research. The journal, which is a peer-reviewed, will devote to the promotion of multi-disciplinary research and explorations to the South Asian and global community. It is our objective to provide a platform for the publication of new scholarly articles in the rapidly growing field of various disciplines. We are trying to encourage new research scholars and post graduate students by publishing their papers so that they may learn and participate in literary publishing through a professional internship. Scholarly and unpublished research articles, essays and interviews are invited from scholars, faculty researchers, writers, professors from all over the world.

Note: All outlook and perspectives articulated and revealed in our peer refereed journal are individual responsibility of the author concerned. Neither the editors nor publisher can be held responsible for them anyhow. Plagiarism will not be allowed at any level. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Hoping all of you shall enjoy our endeavors and those of our contributors.

Editor

CONTENTS

"Samajiki Sandarsh"

➲	जाति–व्यवस्था की विशेषताएं : भारतीय संदर्भ में (Characteristics of Caste-System) ***डॉ. रवि प्रताप सिंह***	01-03
➲	वैदिक युग में नारी शिक्षा और सामाजिक ढांचे का अंतर्संबंध ***डॉ० अशोक कुमार सिंह कुशवाहा***	04-09
➲	देवदासी प्रथा का सामाजिक अध्ययन ***डॉ. विभा कुमारी***	10-14
➲	मुगल काल में शिक्षा के उद्देश्य का अध्ययन ***कौशल किशोर*** ***डॉ. शत्रुघ्न कुमार पाण्डेय***	15-18
➲	ट्रेड यूनियन आन्दोलन के प्रति दृष्टिकोण ***डॉ. अशोक कुमार मिश्रा***	19-22
➲	ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों की शारीरिक क्रियाओं पर मानसिक प्रभावः एक तुलनात्मक अध्ययन ***डॉ. अच्छे लाल यादव***	23-26
➲	शिक्षा और मानवता : दशा एवं दिशा ***डॉ. राजेन्द्र कुमार जायसवाल***	27-30
➲	हिन्दी साहित्य मे किन्नर समाज : एक विमर्श ***डॉ. कल्पित चौधरी***	31-34
➲	इस्लाम से पूर्व अरब में काव्य एवं कविता ***डॉ. नाहीद फ़य्याज़ क़िदवाइ***	35-39
➲	बौद्ध साहित्य में पर्यावरणीय चेतना : समकालीन दृष्टिकोण से मूल्यांकन ***डॉ. संध्या कुमारी***	40-43
➲	अशोक के अभिलेखों में राजनीतिक दर्शन ***डॉ. कमल कृष्ण राय***	44-48
➲	वर्तमान में राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा के परिदृश्य में कौटिल्य के अर्थशास्त्र की उपादेयता : भारत के विशेष सन्दर्भ में ***डॉ. आलोक कुमार सिंह***	49-51
➲	বাংলা সাহিত্যে প্রবাসীদের অবদান Contributions of the Diaspora to Bengali Literature ***Dr. Sanchita Banerjee Roy***	52-58

जाति–व्यवस्था की विशेषताएं : भारतीय संदर्भ में
(Characteristics of Caste-System)

डॉ. रवि प्रताप सिंह*

एन.के. दत्ता के अनुसार सम्पूर्ण जाति–व्यवस्था की आधारभूत विशेषताओं को निम्नांकित रूप से समझा जा सकता है।

1. एक जाति के सदस्य अपनी जाति के बाहर विवाह नहीं कर सकते हैं।
2. एक जाति के सदस्यों पर दूसरी जातियों के सदस्यों के साथ खान–पान के सम्बन्ध रखने पर प्रतिबन्ध है। सभी जातियों के लिए यद्यपि ये प्रतिबन्ध समान प्रकृति के नहीं हैं।
3. अधिकांश जातियों का अपना निश्चित व्यवसाय होता है।
4. सभी जातियों में ऊंच–नीच का एक संस्तरण (*hierarchy*) होता है, जिसमें ब्राह्मणों की स्थिति सर्वोच्च है।
5. व्यक्ति की जाति उसके जन्म से निर्धारित होती है, यदि उसे अपनी जाति के नियमों का उल्लंघन करने के कारण जाति से बहिष्कृत न कर दिया जाये।
6. सम्पूर्ण जाति–व्यवस्था में ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा सर्वोच्च है।

डॉ. धुरिये (*G.S. Ghurye*) ने जाति–व्यवस्था की संरचना (*structure*) और प्रतिबंधों (*restriction*) के आधार पर इसकी छः महत्वपूर्ण विशेषताओं का उल्लेख किया है। डॉ. धुरिये ने आरम्भ में ही स्पष्ट कर दिया है कि ये विशेषताएं जाति–व्यवस्था के साथ सम्बद्ध हैं।

1. समाज का खण्डनात्मक विभाजन (*Segmental Division of Society*)– जाति–व्यवस्था के अन्तर्गत सम्पूर्ण हिन्दू समाज अनेक खण्डों में विभाजित है। प्रत्येक खण्ड में सदस्यों की सामाजिक स्थिति उनके पारस्परिक दायित्व और जातिगत नियम अपने समूह के प्रति सजातीयता की चेतना उत्पन्न करते हैं। खण्डनात्मक विभाजन के कारण प्रत्येक जाति के सदस्यों से यह आशा की जाती है कि वे अपनी जाति के प्रति अपने कर्तव्यों को पूरा करेंगे। प्रत्येक खण्ड की एक न्यायिक परिषद होती है। इस परिषद को जाति–पंचायत (*Caste Panchayat*) कहा जाता है। इस परिषद का कार्य अपने सदस्यों के व्यवहारों पर नियंत्रण रखना और जातिगत नियमों की अवहेलना करने पर उन्हें दण्ड देना होता है। प्रत्येक व्यक्ति का यह दायित्व है कि वह जन्म, विवाह, मृत्यु, धार्मिक भोज (*feast*) अथवा संस्कार जैसे अवसरों पर अपनी जाति के सदस्यों को सहयोग दे।

2. संस्तरण (*Hierarchy*) – संस्तरण का अर्थ है कि जाति–व्यवस्था के अन्तर्गत प्रत्येक जाति की सामाजिक स्थिति दूसरी जाति की अपेक्षा ऊंची अथवा नीची होती है। इस संस्तरण में ब्राह्मणों की स्थिति सर्वोच्च है और इसके बाद क्रमशः क्षत्रिय, वैश्य तथा अस्पृश्य जातियों की स्थिति आती है। एक जाति के अन्दर विभिन्न उप–जातियों के बीच भी एक निश्चित संस्तरण पायी जाती है। सम्पूर्ण भारत में यद्यपि जातिगत संस्तरण को मान्यता दी जाती है। दक्षिण भारत की शिल्पी जाति का उल्लेख अपवाद के रूप में किया जा सकता है। यह जाति ब्राह्मणों द्वारा दी गयी स्थिति के विरुद्ध सदैव अपनी सामाजिक स्थिति को ऊंचा उठाने के लिए संघर्ष करती रही है। इस सम्बन्ध में एक विशेषता यह है कि जातिगत संस्तरण में ब्राह्मणों की स्थिति सर्वोच्च और अस्पृश्य जातियों की स्थिति निम्नतम है। इन वर्णों में स्वयं जिन सैकड़ों जातियों का निर्माण हुआ है, उनके बीच कोई निश्चित संस्तरण नहीं पाया जाता है।

3. खान–पान और सामाजिक सहवास पर प्रतिबन्ध (*Restrictions on Feeding and Social Intercourse*) – जाति–व्यवस्था के अन्तर्गत प्रत्येक जाति के लिए खान–पान और सामाजिक सहवास की स्वीकृति से सम्बन्धित बहुत से नियम है। खान–पान के दृष्टिकोण से भोजन दो प्रकार का–कच्चा और पक्का होता है। कच्चे भोजन से सम्बन्धित नियम अधिक कठोर हैं, जबकि पक्के भोजन के नियम काफी लोचपूर्ण हैं। सामान्य नियम यह है कि कोई भी व्यक्ति अपनी जाति से बाहर के सदस्य द्वारा बनाया गया कच्चा भोजन स्वीकार नहीं करेगा। व्यवहार में निम्न जातियां अपने से उच्च जातियों के सदस्यों द्वारा बनाया गया कच्चा भोजन ग्रहण कर लेती हैं। 'खान–पान के नियंत्रण कान्यकुब्ज ब्राह्मणों में सबसे अधिक जटिल रूप में हैं। सामाजिक सहवास के नियम उत्तर भारत की अपेक्षा दक्षिण भारत में अधिक

* असि. प्रो. राजनीतिशास्त्र विभाग, शिया पी.जी. कॉलेज, लखनऊ

कठोर रहे हैं। 'दक्षिण भारत में अस्पृश्य प्रथा की अतिरेकपूर्ण उदाहरण मिलते हैं। कुछ निम्नतम जातियों का दर्शन मात्र अपवित्रकारी माना जाता था। सामाजिक परंपराओं के द्वारा उच्च जाति के सदस्यों पर अन्त्यज जातियों के सदस्यों का स्पर्श करने, उनके समीप रहने अथवा उनसे बातचीत करने पर प्रतिबन्ध लगाया जाता था। इस प्रकार यह विशेषता जाति–व्यवस्था के निषेधात्मक पहलू को स्पष्ट करती है।

4. नागरिक तथा धार्मिक निर्योग्यताएं और विशेषाधिकार (*Civil and Religious Disabilities and Privileges*) – जातिगत संस्तरण के अनुसार उच्च जातियों को नागरिक और धार्मिक क्षेत्र में विशेष अधिकार प्रदान किये गये हैं। निम्न जातियों पर इनकी निर्योग्यताएं आरोपित कर दी गयी है। इतना ही नहीं, दक्षिण भारत के अधिकांश स्थानों पर उन्हें सार्वजनिक कुओं, सड़कों और तालाबों का उपयोग करने से वंचित रखा गया है। पेशवा शासन–काल में निम्न जातियों की निर्योग्यता इतनी बढ़ा दी गयीं कि माहर और मांग जाति के व्यक्तियों को पूना के मुख्य द्वारों के अन्दर शाम के तीन बजे से लेकर सुबह के नौ बजे तक प्रवेश करने का भी अधिकार नहीं था। मैसूर में अस्पृश्य जातियों की सड़कें और बस्तियां भी नगर के बाहर रखी गयी। यह व्यवस्था इसलिए की गयी ताकि वे उच्च जातियों के सामने भी न आ सकें। यह विशेषाधिकार और निर्योग्यताएं बेहद हास्यास्पद एवं अतार्किक थीं। इस तथ्य का उल्लेख करते हुए डॉ. सक्सेना ने यह उदाहरण भी दिया है कि अनेक उच्च जातियों के व्यक्ति निम्न जातियों के सदस्यों से पानी भरवा सकते थे, लेकिन उनके बर्तन में पानी नहीं पी सकते थे।

5. व्यवसाय के स्वतंत्र चुनाव पर नियंत्रण (*Restriction on Free Choice of Occupation*) – सामान्यतः प्रत्येक जाति का एक वंशानुगत व्यवसाय होता है। सम्बन्धित जाति के प्रत्येक व्यक्ति का यह एक नैतिक और धार्मिक दायित्व है कि वह इसी व्यवसाय के द्वारा आजीविका प्राप्त करे। रिकार्ड्स (*Rickards*) के अनुसार, 'कृषि खेतों में श्रम करना, सेना में नौकरी करना और सामान्य प्रकृति का व्यापार आदि ऐसे व्यवसाय है। इस काम को करने की अनुमति लगभग सभी जातियों को प्राप्त है। उपरोक्त के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि केवल ब्राह्मणों और शूद्रों का व्यवसाय ही निश्चित प्रकृति का है। भारतीय समाज की अन्य जातियों के पेशों में विभाजन की कोई निश्चित रेखा नहीं पायी जाती है।

6. विवाह पर प्रतिबन्ध (*Restriction on Marriage*) – जाति–व्यवस्था का सम्भवतः सबसे कठोर प्रतिबन्ध विवाह से सम्बन्धित है। समाज में किसी भी व्यक्ति को अपनी जाति अथवा उपजाति के बाहर विवाह करने की अनुमति नहीं दी जाती है। कुछ पर्वतीय क्षेत्रों और मालाबार के नम्बूदरी ब्राह्मणों में यद्यपि अपनी जाति से निम्न स्थिति वाली जाति की लड़की से विवाह कर लेने का प्रचलन रहा है। यह भी जाति के अनुलोम विवाह के नियम के अन्तर्गत ही है। इस प्रकार वेस्टरमार्क के अनुसार, ''अन्तर्विवाह (*endogamy*) जाति–व्यवस्था का सार तत्व है। समाज के किसी भी सदस्य द्वारा इस नियम का उल्लंघन करना एक गम्भीर अपराध समझा जाता है।'' ऐसा करने पर कभी–कभी व्यक्ति को अपनी जाति की सदस्यता से बहिष्कृत भी कर दिया जाता है। गेट (*Gait*) ने लिखा है, 'सम्भवतः अन्तर्विवाह का प्रचलन रक्त की पवित्रता को बनाये रखने के लिए नहीं था। जातिगत मिश्रण पर प्रतिबन्ध उप–जातियों की संख्या में होने वाली बढ़ोत्तरी को रोकने के लिए।' 'अभी हाल ही में तमिलनाडु में अन्तरर्जातीय विवाह के कारण वन्नियार *(Vanniyar)* एवं दलितों के मध्य खूनी जातीय संघर्ष हुआ। इस घटना से पहले कालर जाति *(Kallar)* एवं दलितों के मध्य संघर्ष हुआ। कुछ राजनीतिक दल इस जातीय संघर्ष को अपने राजनीतिक फायदे के लिए बढ़ावा दे रहे हैं।' सच तो यह है कि जाति–व्यवस्था के सभी पक्षों में तीव्र परिवर्तन हो जाने के बाद भी अन्तर्विवाह सम्बन्धी प्रतिबन्ध आज भी उतने ही प्रभावपूर्ण बने हुए हैं।

जाति–व्यवस्था की उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर हीवेट (*Margaret Hewitt*) का कथन है कि ''जाति–व्यवस्था समुदाय द्वारा सामान्य रूप से स्वीकृत नियमों की वह कार्यात्मक व्यवस्था है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत उद्देश्यपूर्ण रूप से सामाजिक स्तरीकरण का निर्धारण किया गया।'' इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि जाति–व्यवस्था हिन्दू सामाजिक जीवन की एक महत्त्वपूर्ण संस्था है। जाति–संस्था का उद्देश्य जन्म के आधार पर व्यक्ति की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति को निर्धारित करके अपेक्षाकृत एक बन्द समाज (*closed society*) का निर्माण करना है।

सन्दर्भ सूची–

1. दुबे, अभय कुमार (सं.); लोकतंत्र के सात अध्याय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005।
2. दुबे, एम. पी. : धर्म निरपेक्षता और भारतीय प्रजातंत्र ; नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 1991।

3. बसु, डी. डी. ; भारत का संविधान : एक परिचय (इंट्रोडक्शन टू दि कांस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया का बी. के. शर्मा द्वारा अनुवाद) प्रेंटिस हाल ऑफ इंडिया प्रा. लि. नई दिल्ली ; 1990।
4. मिश्र, रत्नेश कुमार : भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय दल : समाजवादी पार्टी का अध्ययन, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2011।
5. राय, सत्या एम. (सं.): भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद; हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली 2009।

वैदिक युग में नारी शिक्षा और सामाजिक ढांचे का अंतर्संबंध

डॉ० अशोक कुमार सिंह कुशवाहा*

सारांश

'वैदिक युग में नारी शिक्षा और सामाजिक ढांचे का अंतर्संबंध" विषय पर प्रस्तुत यह अध्ययन, दरअसल, हमें यह सोचने पर मजबूर करता है कि उस दौर में स्त्रियों की क्या स्थिति थी, खासकर शिक्षा के संदर्भ में। वैदिक ग्रंथों जैसे ऋग्वेद, उपनिषद, और यजुर्वेद में कुछ स्त्रियाँ न केवल शिक्षित थीं, बल्कि वे ऋषिका और ब्रह्मवादिनी जैसे सम्मानित रूपों में भी दिखाई देती हैं। इससे यही संकेत मिलता है कि उस समय नारी को बौद्धिक गतिविधियों में भाग लेने का पूरा हक था। सामाजिक दृष्टि से देखा जाए तो वैदिक युग में नियम-कानून कठोर तो थे, किन्तु स्त्रियों के लिए अवसर भी थे। ऐसा भी नहीं था कि हर कोई बराबरी में था, लेकिन फिर भी उस समय की संरचना में महिलाओं को एक खास दर्जा ज़रूर मिला हुआ था। ये कहना गलत नहीं होगा कि समाज और शिक्षा एक-दूसरे से जुड़े हुए थे और महिलाओं की भागीदारी से सामाजिक सोच को भी गहराई मिली। इस अध्ययन में ऐतिहासिक और विश्लेषणात्मक तरीका अपनाया गया है। वैदिक ग्रंथों के साथ-साथ पुरातात्विक साक्ष्यों और उस दौर के साहित्य को पढ़कर तुलनात्मक ढंग से विचार किया गया।

मुख्य शब्द : वैदिक युग, नारी शिक्षा, सामाजिक ढांचा, महिलाओं की भागीदारी, लैंगिक समानता।

प्रस्तावना

जब हम भारत के इतिहास की गहराइयों में झाँकते हैं, तो वैदिक युग के रूप में एक ऐसा समय सामने आता है जो केवल धार्मिक या आध्यात्मिक दृष्टि से नहीं, बल्कि सामाजिक और शैक्षणिक दृष्टिकोण से भी अत्यंत समृद्ध रहा है, खासकर नारी की भूमिका को लेकर। उस युग में स्त्रियाँ केवल घर की चारदीवारी तक सीमित नहीं थीं अपितु वे विद्या की साधना में भी लीन थीं और समाज में एक विचारशील भूमिका निभा रही थीं। ऋग्वेद और उपनिषद जैसे ग्रंथों में गार्गी, मैत्रेयी, लोपामुद्रा जैसी महिलाओं का ज़िक्र आता है, ये केवल नाम नहीं बल्कि उस समय की सोच और सामाजिक दृष्टिकोण का भी प्रतीक हैं। इन स्त्रियों ने न केवल वेदों का अध्ययन किया, बल्कि दार्शनिक विमर्श में भी हिस्सा लिया। कुछ तो ऐसे उदाहरण भी हैं जहाँ उन्होंने पुरुष विद्वानों को तर्क में हरा दिया। यह विचारणीय है कि भारत में ऐसा युग भी रहा था जब ज्ञान का अधिकार सिर्फ़ लिंग पर आधारित नहीं था। **डॉ॰ शुक्ला ऋतु** के अनुसार, "प्राचीन भारतीय संस्कृति के स्वर्णिम काल अर्थात वैदिक काल में नारी, पुरुष वर्ग के साथ समान रूप से समाज के अभ्युत्थान, उत्कर्ष एवं परिष्कार में सहायक थी"।[1]

वैदिक समाज की जो बात सबसे ज़्यादा आकर्षित करती है वो ये है कि वहाँ सामाजिक ढाँचा इतना कठोर नहीं था। हर व्यक्ति, चाहे स्त्री हो या पुरुष, उसे आत्मिक और बौद्धिक उन्नति का अवसर मिल सकता था और यही बात नारी शिक्षा को सम्भव बनाती थी। उस समय 'ब्रह्मवादिनी' शब्द का प्रयोग उन स्त्रियों के लिए होता था जो ज्ञान की तलाश में अपने जीवन को समर्पित करती थीं। अब सवाल ये उठता है कि शिक्षा और समाज का क्या संबंध था? तो सीधी बात ये है कि जब स्त्री शिक्षित होती है, तब वो केवल अपने तक सीमित नहीं रहती बल्कि वो अपने परिवार, अपने बच्चों, यहाँ तक कि पूरे समाज की सोच को दिशा देती है; वैदिक युग में ऐसा था। नारी की भागीदारी केवल धार्मिक या पारिवारिक नहीं थी, वो सामाजिक संवाद और

* असिस्टेंट प्रोफेसर (बी॰ एड॰), कौशिल्या पी॰ जी॰ कॉलेज, दिलावरपुर, मड़ियाहूं, जौनपुर।
Email: ashok20586@gmail.com

निर्णय में भी सम्मिलित हुआ करती थी। यही वजह रही कि उस समय का समाज तुलनात्मक रूप से ज़्यादा संतुलित और संवेदनशील था। समय परिवर्तनशील है, इसलिए सब कुछ स्थिर तो नहीं रह सकता था। समय के साथ बदलाव हुए, और उत्तर वैदिक काल आते-आते स्थितियाँ बदलने लगीं। धीरे-धीरे शिक्षा का अधिकार पुरुषों तक सीमित होने लगा, और स्त्रियों को घरेलू भूमिकाओं में बाँध दिया गया। यही बदलाव आज तक कई रूपों में हमारे समाज में दिखता हैं।

आज जब हम नारी समानता और शिक्षा की बात करते हैं, तो यह समझना भी ज़रूरी है कि यह कोई पश्चिमी विचार नहीं है जिसे हमने अपनाया है अपितु हमारे यहाँ तो ये परंपरा रही है और वो भी हजारों साल पुरानी। वैदिक युग की स्त्रियों का स्वरूप यह यह स्पष्ट करता है कि यदि अवसर मिले, तो स्त्रियाँ समाज को भी दिशा दे सकती हैं और स्वयं भी ऊँचाइयों तक पहुँच सकती हैं। कुल मिलाकर, वैदिक युग में नारी शिक्षा और सामाजिक ढाँचे का जो संबंध था, वो महज ऐतिहासिक तथ्य नहीं है वो आज भी हमें सोचने, सीखने और प्रेरित होने की प्रेरणा प्रदान करता है। यही इस शोध का मूल उद्देश्य भी है।

अध्ययन के उद्देश्य

- वैदिक युग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करना।
- वैदिक युग में स्त्रियों की स्थिति तथा नारी शिक्षा के स्वरूप का विश्लेषण करना।
- वैदिक युगीन शिक्षा और सामाजिक ढांचे के बीच अंतर्संबंध का अध्ययन करना।
- वैदिक युगीन नारी शिक्षा और सामाजिक ढांचे के बीच अंतर्संबंध की वर्तमान प्रासंगिकता का अध्ययन करना।

वैदिक युग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

वैदिक युग हमारे इतिहास का वो शुरुआती दौर रहा है जहाँ से भारतीय संस्कृति और सोच की बुनियाद रखी गई। सामान्यतः इसे 1500 ईसा पूर्व से लेकर 600 ईसा पूर्व तक का समय माना जाता है। इस पूरे काल को दो हिस्सों में बाँटा जाता है, एक है प्रारंभिक वैदिक काल और दूसरा उत्तर वैदिक काल। इस युग का मुख्य स्रोत वेद ही हैं, खासकर ऋग्वेद, जिसमें उस समय के जीवन, समाज और धार्मिक रीतियों की साफ झलक मिलती है। शुरुआत में समाज जनजातीय था और सब कुछ मिल-बाँट कर चल रहा था। राजा था ज़रूर, लेकिन उसका काम सिर्फ़ रक्षा करना और न्याय देना होता था। वर्ण व्यवस्था भी थी, पर वह कर्म आधारित थी और इतनी सख्त भी नहीं थी जितनी बाद में हुई। जन्म से ज़्यादा काम-काज पर ज़ोर था और उस समय की जो एक बड़ी खासियत थी, वो ये कि महिलाओं को भी शिक्षा का हक था, यज्ञों में भाग लेने का मौका मिलता था और उन्हें विचार-विमर्श में भी शामिल किया जाता था।

वैदिक धर्म यज्ञों के इर्द-गिर्द घूमता था। अग्नि, इन्द्र, वरुण, सूर्य जैसे देवता पूजे जाते थे, जो दरअसल प्रकृति की शक्तियों के प्रतीक थे। आज के जैसे कोई किताबें या लिखित दस्तावेज़ तो नहीं थे, पर मौखिक परंपरा इतनी मजबूत थी कि पीढ़ी दर पीढ़ी सब ज्ञान आगे बढ़ता गया। लोग सुनते थे, याद रखते थे और आगे बताते थे। बाद में, जब उत्तर वैदिक काल आया, तब चीज़ें कुछ बदलने लगीं। समाज थोड़ा जटिल हो गया, वर्ण व्यवस्था जन्म आधारित हो चली थी था अपेक्षाकृत सख्त भी हो गई तथा महिलाओं की स्थिति भी कुछ सीमित होने लगी। कृषि, व्यापार अदि बढ़ा, जिससे अमीरी-गरीबी जैसी बातें भी दिखने लगीं। कुल मिलाकर देखा जाए तो वैदिक युग एक ऐसा समय था जहाँ सामाजिक संतुलन था, सोच में गहराई थी और नारी-पुरुष दोनों की भूमिका बराबरी की थी और यही बात उस युग को खास भी बनाती है किन्तु उत्तर वैदिक काल आते-आते परिस्थितियाँ जटिल और प्रतिकूल होती चली गयी।

वैदिक युग में स्त्रियों की स्थिति

वैदिक युग में स्त्रियों की जो स्थिति रही है, वो आज की सोच की तुलना में कई सन्दर्भों में अपेक्षाकृत ज़्यादा प्रगतिशील मानी जा सकती है। उस समय की महिलाएँ सिर्फ़ घर-संसार तक सीमित नहीं थीं, बल्कि शिक्षा, धर्म और समाज की बातचीत में खुलकर हिस्सा भी लेती थीं। अब आप खुद सोचिए, जब ऋग्वेद में गार्गी, मैत्रेयी, लोपामुद्रा, अपाला जैसी विदुषियों का ज़िक्र मिलता है, तो ये बात यूँ ही नहीं कही जा सकती कि स्त्रियाँ केवल पर्दे में थीं। ये महिलाएँ शास्त्रार्थ करती थीं, ऋषियों से गूढ़ प्रश्न पूछती थीं और आत्मा तथा ब्रह्म की गहराई में उतरने की हिम्मत भी रखती थीं। उन्हें उस समय यज्ञों में बैठने, मंत्र बोलने और यहाँ तक कि कुछ अवसरों पर ऋत्विज (यज्ञ कराने वाली स्त्री) की भूमिका के निर्वहन का भी अधिकार था। 'ब्रह्मचारिणी' और 'ब्रह्मवादिनी' जैसे शब्द ये बताने के लिए काफी हैं कि शिक्षा स्त्रियों के लिए भी उतनी ही आवश्यक समझी जाती थी जितनी पुरुषों के लिए। इस सन्दर्भ में **डॉ. शिखर वासिनी** का विचार है कि, "प्राचीन भारत में स्त्री शिक्षा अपनी उच्चतम सीमा पर थी। वह पुरूषों के समकक्ष बिना भेद-भाव के शिक्षा प्राप्त करती थी। बुद्धि और ज्ञान में अग्रणी थी। पुत्र की तरह पुत्री का भी विद्यारम्भ से पूर्व उपनयन संस्कार सम्पन्न किया जाता था तथा वह भी ब्रह्मचर्य का पालन करती हुई विभिन्न विषयों का अध्ययन करती थी। उसे यज्ञ सम्पादन और वेदाध्ययन का पूर्ण अधिकार था, दर्शन और तर्कशास्त्र में स्त्रियाँ निपुण थी। सभा व गोष्ठियों में वे ऋग्वेद् की ऋचाओं का गान किया करती थी"।[2]

यदि हम समाज की संरचना को देखें, तो वहाँ स्त्री को केवल पत्नी या माँ के रूप में नहीं देखा गया बल्कि उसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों की सहभागी माना गया। उसके विचारों को सुना जाता था, उसकी सलाहों का महत्त्व था। कहने का मतलब, वो सिर्फ़ पीछे खड़ी रहने वाली नहीं थी, बल्कि साथ चलने वाली थी। हाँ, उत्तर वैदिक काल आते-आते कुछ न कुछ बदलने लगा। समाज में पितृसत्ता हावी हुई, नियम-कायदे कड़े हुए और शिक्षा से स्त्रियों को धीरे-धीरे दूर किया जाने लगा। लेकिन फिर भी, वैदिक काल की स्त्री ये साबित कर चुकी थी कि अगर अवसर और सम्मान मिले, तो वो न केवल घर बल्कि पूरी सभ्यता को दिशा दे सकती है। यही वजह है कि आज जब हम नारी शिक्षा और समानता की बात करते हैं, तो वैदिक युग की याद अपने आप आ जाती है क्योंकि वहीं से इसकी शुरुआत हुई थी। इस विषय पर **डॉ. वंशिका** कहती हैं कि, "स्थिति और पद के मामले में, ऋग्वेदिक काल में महिलाओं के साथ उनके पुरुष समकक्षों के समान ही व्यवहार किया जाता था। कई बार, केवल विवाहित पुरुष जो अपने जीवनसाथी के साथ मौजूद होते थे, उन्हें धार्मिक अनुष्ठान करने की अनुमति होती थी। शास्त्रों में, महिलाओं को न केवल समान स्थान दिया गया है, बल्कि उन्हें बेहतर आधे से भी अधिक माना गया है- एक ऐसा दर्जा जो समय के साथ खत्म हो गया है"।[3]

नारी शिक्षा का स्वरूप

वैदिक युग में नारी शिक्षा का जो स्वरूप था, वो आज सोचकर भी हैरानी सी होती है। मतलब, उस समय लड़कियों को भी पढ़ने-लिखने की आज़ादी थी और वो भी केवल नाम मात्र नहीं बल्कि अच्छे-खासे गहन विषयों में। वेद, उपनिषद, खगोल, संगीत, यहां तक कि आयुर्वेद तक, सब पढ़ाया जाता था। स्त्रियों के सन्दर्भ में ऐसा नहीं था कि बस घर के काम सीखो और शादी कर लो जो कि; सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, मनोवैज्ञानिक आदि रूप से पिछड़े समाज में आज भी देखने को मिलता है। वैदिक युग की स्त्रियाँ 'ब्रह्मचारिणी' और 'ब्रह्मवादिनी' कहलाती थीं, ये कोई छोटी बात नहीं थी। कुछ स्त्रियाँ तो इतनी विद्वान होती थीं कि गुरुकुलों में पढ़ने भी जाती थीं और कई बार खुद भी गुरू बनकर दूसरों को पढ़ाती थीं इस तरह के कार्यों के लिए ऋग्वेद में गार्गी, मैत्रेयी, अपाला जैसी महिलाओं के नाम बड़े गर्व से आते हैं। कहने का आशय मात्र यह है कि ऋग्वैदिक काल की शिक्षा में बराबरी की भावना देखने को मिलती थी जो उत्तर वैदिक काल के आते-आते विकृत रूप लेने लगी। **एम. के. चौधरी** के अनुसार, "जहां ऋग्वैदिक काल में उन्हें समाज में सम्मानित स्थान प्राप्त होता था

वही उत्तर वैदिक काल आते-आते उनकी स्थिति में बहुत ही अधिक गिरावट दर्ज होने लगी। ऋग्वैदिक काल का जीवन अपेक्षाकृत स्वतंत्र और स्वच्छंद होता था महिलाएं अपने जीवनसाथी का चुनाव कर सकती थी। सामाजिक गतिविधियों में उनके किसी भी सहभागिता पर प्रतिबंध नहीं होता था। वैदिक काल में स्त्री को जितनी स्वतंत्रता थी उतनी किसी भी युग में नहीं रही। उत्तर वैदिक काल की स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन आया और उनकी दशा में अवनति के तत्व दिखाई देने लगे। उनका सामाजिक स्तर गिरा और उन्हें समाज में अब वह सम्मान नहीं प्राप्त होता था जो ऋग्वैदिक काल में प्राप्त होता था"।[4]

संदर्भित समय में शिक्षा मौखिक हुआ करती थी, तो स्मरण शक्ति और ध्यान देना ज़रूरी था। मंत्र याद रखने, सही उच्चारण करने जैसी चीज़ें भी सिखाई जाती थीं। लेकिन सिर्फ़ धार्मिक बातें ही नहीं होती थीं, व्यावहारिक ज्ञान भी दिया जाता था ताकि जीवन को सही से जिया जा सके। असल में नारी शिक्षा उस समय केवल किताबी ज्ञान तक सिमित नहीं थी, बल्कि जीवन जीने की समझ, सोचने की स्वतंत्रता और समाज को दिशा देने की तैयारी के रूप में हुआ करती थी। बाद में, उत्तर वैदिक काल में थोड़ी गिरावट ज़रूर आई जो गुप्त काल आते-आते अत्यन्त विकृत रूप ले चुकी थी जिसका परिणाम वर्तमान स्त्रियों को भी भुगतना पड़ रहा है।

शिक्षा और सामाजिक ढांचे के बीच अंतर्संबंध

शिक्षा और सामाजिक ढांचे के बीच का रिश्ता बड़ा ही गहरा और कहीं-कहीं उलझा हुआ भी लगता है। जैसे-जैसे समाज बदलता है, वैसे-वैसे शिक्षा का तरीका, उसका दायरा और मकसद भी बदलता जाता है। और इसके विपरीत जब शिक्षा में बदलाव आता है, तो समाज में सोच-विचार, व्यवहार और यहां तक कि रिश्तों में भी फर्क दिखने लगता है। अर्थात दोनों एक-दूसरे से ऐसे जुड़े हैं जैसे गाड़ी के दो पहिये, एक रुका तो दूसरा भी ज़्यादा दूर नहीं चल पाएगा। अब सोचिए, अगर समाज में भेदभाव है, जैसे- वर्ण, जाति, लिंग या सम्पन्नता के आधार पर तो शिक्षा भी उसी ढांचे के हिसाब से सीमित हो जाएगी। मतलब सबको एक जैसा पढ़ने का हक भले कागज़ पर हो, लेकिन ज़मीनी स्तर पर फर्क साफ़ दिखाई देगा और यदि समाज थोड़ा खुला हो, सोचने की आज़ादी दे, तो शिक्षा भी ज्यादा इनोवेटिव हो जाती है, नई चीज़ें सिखाने लगती है।

शिक्षा का काम सिर्फ़ किताबें पढ़ाना नहीं है, वो इंसान को जीने का तरीका भी सिखाती है जैसे- किससे कैसा बर्ताव करना है, समाज में कैसे रहना है और कौन से मूल्य अपने जीवन में अपनाने हैं आदि। स्कूल, परिवार और पास-पड़ोस, ये सब मिलकर उस शिक्षा को आकार देते हैं। यही कारण है कि हर पीढ़ी कुछ नया सीखती है और कुछ नया सोचती भी है। इतिहास भी यही कहता है कि जब स्त्रियों को पढ़ने का हक मिला, तो उन्होंने समाज में भी अपने अधिकारों के लिए आवाज़ उठाई। और जब वंचित तबकों को शिक्षा मिली, तब उन्होंने भी बराबरी का सपना देखना शुरू कर दिया। तो ये बात पक्की है कि शिक्षा और समाज का रिश्ता सिर्फ़ औपचारिक नहीं, बल्कि दिल से जुड़ा हुआ है। एक में हलचल होती है, तो दूसरा खुद-ब-खुद हिल जाता है। यही अंतर्संबंध उन्हें एक-दूसरे का हिस्सा बना देता है जैसे चिन्तन और जीवन। इन्ही सन्दर्भों में बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर का कथन है कि, 'शिक्षा शेरनी का दूध है, जो जितना पिएगा उतना ही दहाड़ेगा'। **स्मृति एस.** के अनुसार, "प्राचीन भारत में शिक्षा राज्य या सरकार या किसी भी पार्टी की राजनीति जैसे किसी भी बाहरी नियंत्रण से मुक्त थी। यह देखना राजा का कर्तव्य था कि विद्वान पंडित अपनी पढ़ाई जारी रखें और किसी भी स्रोत से हस्तक्षेप किए बिना ज्ञान प्रदान करना उनका कर्तव्य था। इसलिए, भारत में शिक्षा किसी भी सांप्रदायिक हित या पूर्वाग्रह से ग्रस्त नहीं थी"।[5]

आधुनिक सन्दर्भ में प्रासंगिकता

आज के आधुनिक संदर्भ में जब हम शिक्षा, समाज और नारी की भूमिका की बात करते हैं, तो वैदिक युग की कई बातें अब भी उतनी ही सार्थक प्रतीत होती हैं जितनी उस समय रही होंगी। उस समय नारी को जो सम्मान, अधिकार और शिक्षा का अवसर प्राप्त था, वह आज के संदर्भ में एक आदर्श की तरह देखा जा सकता

है। आज जब नारी सशक्तिकरण, समानता और स्वतंत्रता की बातें की जा रही हैं, तब वैदिक युग की विचारधारा हमारे लिए मार्गदर्शक बन सकती है। समाज में तेजी से हो रहे बदलाव, तकनीक का बढ़ता प्रभाव और वैश्विक स्तर पर हो रही प्रतिस्पर्धा ने शिक्षा को पहले से कहीं अधिक आवश्यक बना दिया है। परंतु केवल तकनीकी ज्ञान ही पर्याप्त नहीं है, हमें मानवीय मूल्यों, सामाजिक चेतना और सांस्कृतिक समझ की भी ज़रूरत है। वैदिक युग में शिक्षा जीवन के हर पहलू को छूती थी जैसे- आत्मबोध, समाज सेवा, प्रकृति से जुड़ाव और आध्यात्मिक सोच आदि। आज भी यदि शिक्षा उसी समग्र दृष्टिकोण से दी जाए, तो सामाजिक ढांचे में कई सकारात्मक बदलाव आ सकते हैं।

नारी की भूमिका आज भी सिर्फ़ घर की सीमाओं तक नहीं है। वह डॉक्टर है, वैज्ञानिक है, शिक्षक है, नेता है और इन सभी भूमिकाओं में उसे बराबरी का स्थान मिल रहा है और मिलना भी चाहिए। आधुनिक समाज में यदि हम वैदिक काल की उस सोच को फिर से जीवित करें जिसमें नारी को 'सहधर्मिणी' माना जाता था, तो स्त्री-पुरुष के बीच का संतुलन और बेहतर बन सकता है। संक्षेप में कहें तो वैदिक युग की शिक्षात्मक और सामाजिक दृष्टि आज के समय में न केवल प्रासंगिक है, बल्कि आवश्यक भी है। यह हमें याद दिलाती है कि आधुनिकता का मतलब केवल तकनीक नहीं, बल्कि जड़ों से जुड़कर आगे बढ़ना भी होता है। यही संतुलन हमें एक बेहतर और अधिक समावेशी समाज की ओर ले जा सकता है।

निष्कर्ष एवं सुझाव

वैदिक युग में नारी शिक्षा और सामाजिक ढांचे का जो आपसी जुड़ाव था, वो आज के समय में भी सोचने लायक है। जब हम इतिहास की ओर देखते हैं, तो साफ़ दिखता है कि उस दौर में महिलाओं को केवल घर की चारदीवारी में नहीं बांधा गया था बल्कि उन्हें वेद पढ़ने, शास्त्रों पर विचार करने, और यहां तक कि समाजिक विमर्श में हिस्सा लेने का भी पूरा हक़ मिला हुआ था। **कृष्ण, डॉ. अजय** के अनुसार, "ऋग्वैदिक काल में अनार्य स्त्रियों में भी शिक्षा का प्रचलन था। लेकिन उसकी शिक्षा वेदान्तिक नहीं थी बल्कि शारीरिक और सांस्कृतिक शिक्षा की व्यवस्था थी"।[6] **सेंगाडा, सुनीता** का विचार भी इससे मेल खाता है कि, वैदिक काल में स्त्रियों हेतु धर्माचरण तथा शालीनता अपेक्षित थी। उनके व्यक्तिगत विकास को कुण्ठित नहीं किया जाता था।[7] उस युग की तत्कालीन विदुषियाँ इस बात का प्रमाण हैं कि समाज और शिक्षा दोनों ने स्त्री को एक समान अधिकार और स्थान देने का प्रयास किया था। लेकिन अफ़सोस की बात ये है कि समय बीतने के साथ ये सोच भी कहीं पीछे छूटती चली गई। उत्तर वैदिक काल में जैसे ही पितृसत्ता मज़बूत हुई, वैसे-वैसे स्त्रियों की शिक्षा और सामाजिक भागीदारी पर पहरे लगने लगे। और यही गिरावट आने वाले युगों में और गहरी होती गई। आज जब हम बराबरी की बात करते हैं, महिला सशक्तिकरण की बातें करते हैं तो ज़रूरत है कि हम पीछे मुड़कर देखें और समझें कि कभी हमारा समाज इससे कहीं आगे था। और जब उत्तर वादिक काल में नारी शिक्षा पर पहरे लगे तो समाज पर उसका बुरा प्रभाव पड़ा। **रेशमा** के अनुसार, "प्राचीन भारत में महिला सशक्तिकरण के मुद्दे अधिक चिंता का विषय थे, जो संस्कृत साहित्य में परिलक्षित होते हैं और प्राचीन समय में भी महिलाओं को शिक्षित करना रणनीति थी। महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए, भारतीय परंपराओं में महिलाओं को घरों के प्रबंधन के लिए विशिष्ट भूमिकाएँ सौंपी गई हैं। भारतीय प्राचीन ज्ञान लैंगिक समानता और महिला सशक्तिकरण के लिए एक मूल्य प्रणाली के माध्यम से एक दिशा प्रदान करता है ताकि महिलाएँ सहज और कल्याण में रह सकें"।[8]

आज इस बात को समझना होगा कि आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में केवल किताबी ज्ञान से बात नहीं बनेगी। लड़कियों को वो शिक्षा मिलनी चाहिए जो उन्हें आत्मनिर्भर बनाये, सोचने की आज़ादी दे और बोलने का हौसला भी। उन्हें पढ़ाया ही नहीं, बल्कि सुना भी जाए। पाठ्यक्रम में स्त्री दृष्टिकोण, वैदिक युग की नारी भूमिका और आज की चुनौतियों को लेकर गंभीर बातें होनी चाहिए, वो भी जमीनी स्तर पर और खुले दिल से।

आज अगर हम सच में बदलाव चाहते हैं, तो समाज के हर कोने में, चाहे वो घर हो, स्कूल हो या सरकार, स्त्रियों को बराबरी से देखना होगा और हमें फिर से वो संतुलन बनाना होगा जो ऋग्वैदिक युग में देखा गया था, जहाँ शिक्षा और समाज एक-दूसरे को पोषित करते थे। और शायद वहीं से हमें वो राह मिलेगी, जो सिर्फ़ उन्नति की नहीं, बल्कि न्याय और समरसता की ओर भी ले जाएगी।

सन्दर्भ

i. डॉ॰ शुक्ला, ऋतु (2017). वैदिक काल में नारी, IJSRST. Volume 3, Issue 3, Print ISSN: 2395-6011, Online ISSN: 2395-602X, https://ijsrst.com/paper/1751.pdf

ii. **डॉ. शिखर वासिनी**. (2025). *वैदिक कालीन नारी शिक्षा: एक अध्ययन*. *International Education and Research Journal (IERJ)*, 11(03), पटना. https://ierj.in/journal/index.php/ierj/article/view/4033

iii. **वंशिका.** (2023). *Power, Opportunity And Status Of Women In The Golden Vedic Era*. *Elementary Education Online*, 20(6), 4046-4055. Delhi. https://ilkogretim-online.org/index.php/pub/article/view/4485

iv. **चौधरी, एम. के.** (2024). *ऋग्वैदिक और उत्तर वैदिक कालीन महिलाओं की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन*. *Gyanshauryam*, 7(4), 6-11. https://gisrrj.com/GISRRJ24742

v. स्मृति, एस॰ (2023). *Education of Women in Early Vedic Period*. *International Journal of English Literature and Social Sciences (IJELS)*, 8(5), 116-122. https://journal-repository.com/index.php/ijels/article/view/6723

vi. कृष्ण, डॉ॰ अजय. (2020). प्राचीन काल में शिक्षा का स्वरूप एवं प्राचीन काल में स्त्री शिक्षा. International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS) 13 ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 5.143, Volume 02, No. 04, October - December, 2020, pp.13-16, https://www.inspirajournals.com/uploads/Issues/347541430.pdf

vii. सेंगाडा, सुनीता (2024). वैदिक काल में नारी शिक्षा. International Journal of Sanskrit Research 2024; 10(1): 217-219, https://www.anantaajournal.com/archives/2024/vol10issue1/PartD/10-2-2-395.pdf

viii. **रेशमा** (2023). *Women education in ancient India*. *Zenodo Repository*, pp. 5-18. Retrieved from https://zenodo.org/record/7957069/files/Reshma.pdf

देवदासी प्रथा का सामाजिक अध्ययन

डॉ. विभा कुमारी*

सरांशिका -

किसी भी संस्कृति का एक अहम हिस्सा प्रथा होता है जो उस क्षेत्र विशेष कि आवश्यकता के अनुसार विकसित होता है | विश्व में कई प्रकार कि ऐसी प्रथा है मुख्य रूप से स्त्रियों से जुड़ी होती है | इन प्रथाओं के कारण स्त्रियों का शोषण भी हुआ है | ऐसी ही एक प्रथा देवदासी प्रथा है | जिसमें धर्म के नाम पर छोटे - छोटे बालिकाओं को देवदासी बना दिया जाता है | एक समय तक तो मंदिर मे उनकी इज्जत बनी रहती है, परंतु उम्र के ढलने के साथ उनकी इज्जत कम होने लगती है | कई बार उन्हे यौन शोषण का भी सामना करना पड़ता है | आजीविका के साधन न उपलब्ध होने पर उन्हे की कई बार उन्हे वेश्यावृती जैसे कार्यों को भी करना पड़ता है | इस प्रथा के कारण उन्हें कई प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक कष्टों का सामना करना पड़ता है | जिसका एक व्यापक प्रभाव सम्पूर्ण जीवन पर पड़ता है | प्रस्तुत लेखन में देवदासी प्रथा और इस प्रथा के कारण होने वाले स्त्री के समस्याओं को समझने का प्रयास किया जा रहा है |

मुख्य शब्द *- देवदासी प्रथा, स्त्री शोषण, देवदासी की समस्या |*

प्रस्तावना-

विश्व के सभी संस्कृति के विकास को विहंगम दृष्टि से अवलोकित करे तो हमें यह संज्ञान होता है की, विश्व के सभी प्राचीन संस्कृतियों का निर्माण एक निश्चित क्रम में हुआ है | इन संस्कृतियों ने समय के साथ अपने अंदर समाहित तत्वों को आवश्यकता के अनुसार परिवर्तित किया है | यह संस्कृति ही है जो एक स्वस्थ समाज के निर्माण में सहायक होता है | इन संस्कृति के निर्माण मे की बहुत सारे तत्वों का योगदान होता है | एक संस्कृति के निर्माण मे प्रथाओं और परंपराओं का भी योगदान होता है | भारत को अगर प्रथाओं और परंपराओं का देश कहा जाए तो कोई भी अतिशयोक्ति नहीं होगा | भारत मे सबसे अधिक रूप में हम प्रथाओं और परंपरों का जुड़ाव धर्म से देखते है | इसका एक कारण यह भी हो सकता है की जब कोई भी प्रथा धर्म से जुड़ जाती है तो उसे समाप्त होने मे एक दीर्घ काल का समय लगता है | या तो इसे बदलने के लिए एक विशाल जन समूह में इसे बदलने की भावना होनी चाहिए | कुछ ऐसे प्रथा भी होती है जो अनेक प्रयास के बाद भी हमारे समाज भी आज भी मौजूद है, जो समय के साथ धीरे- धीरे समाज के लिए एक कुप्रथा का रूप धारण कर लिया है, फिर भी वो समाज में समाप्त नहीं हुआ है | ऐसी ही एक प्रथा है देवदासी प्रथा | जो विशेषकर दक्षिण भारत एवं महाराष्ट्र जैसे क्षेत्र में पाई जाती है | देवदासी प्रथा का नाम सुनते ही हमे अपने मानस पटल पर दक्षिण भारत मे मंदिरों मे समर्पित उन महिलाओं का दृश सामने आता है जो इस प्रथा के कारण एक नारकीय जीवन जीने को मजबूर है |

देवदासी बनाने की प्रक्रिया -

देवदासी बनाने की प्रक्रिया एक उत्सव की तरह होता है | देवदासी प्रथा का मुख्य केंद्र कर्णाटक राज्य के सौंदती बेलगांव कस्बे में एक पहाड़ी पर स्थित यलम्मा देवी का मंदिर है | प्रति वर्ष माघ माह की पूर्णिमा को इस मंदिर में विराट मेला लगता है | इस मेले में प्रति वर्ष ४-५ हजार अबोध बालिकाओं को देवी को समर्पित कर देवदासी बनाया जाता है | इस मेल मे जो भी लड़की देवदासी के रूप मे मंदिर में समर्पित की जाती उनकी

* पूर्व शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
Email - vibhavns2oct@gmail.com

आयु बहुत कम होती है | उनका मासिक - धर्म भी प्रारंभ नहीं हुआ रहता हैं | महज 10 से 12 वर्ष के रूप मे इन्हे दवदासी बना दिया जाता है | ये मासूम लड़किया इस बात से अनजान रहती है की उनके साथ क्या किया जा रहा है | कैसे वो एक ऐसे जीवन मे प्रवेश कर रही है जहां उन्हे जीवन भर संघर्ष का सामना करना पड़ेगा | ध्यान देने वाली बात यह कि अपनी पुत्रियों को देवी यलम्मा कि चरणों में समर्पित कर देवदासी बनाने का मुख्य कारण मनौती (मंन्नत) का पूरा हो जाना होता है | मन्नत पूरा हो जाने पर कन्या को माता -पिता को देवदासी बना देते थे | इसके अलावा गरीबी भी देवदासी बनने का एक कारण होता है | परिवार मे अधिक लड़की होने पर कुछ लड़की की तो शादी कर दि जाती है, लेकिन कुछ लड़की ऐसी भी होती जिनकी शादी नहीं की जाती है | उन्हे मंदिरों में देवदासी के रूप मे समर्पित कर दिया जाता है ताकि मंदिर के आशीर्वाद और कृपया से देवदासी बने लड़की से परिवार का भरण - पोषण चल सके | कुछ अछूत जाति के लोग अपनी सामाजिक स्थिति में सुधार के लिए भी अपनी परिवार के लड़की को देवदासी बनने पर मजबूर करते है |

देवदासियों के विभिन्न नाम -

भारतीय समाज एक ऐसा समाज है जो अपने अंदर कई सारे विभिन्नता को समाहित किया हुआ है | यह विभिन्नता सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि है | भारत में इन्हीं सांस्कृतिक एवं भौगोलिक विविधताओं के कारण देवदासी को कई नामों से जाना जाता है जैसे तावतासी, तेवारतियार, पतियालर, तलिकिसरी पेंडुकल, तेवनार मकल, कोट्टिकल, अतिकलमार, मणिककटर, काणिकैयार, एम्परुमनतियार और कोयिल पिनक्कल में कई नामों से दर्शाया गया था | तमिलनाडु में तेविडीची, नंगौरमार कुदिकारी, मुरिक्कारी, कुट्टाची, कुथिची और अटककारी | कर्णाटक में सुलेर या सुले, पोटी | केरल में बसवी और जोगती | आंध्र प्रदेश में सनिस और भोगम | असम में कुरमपस और कुदिपस| कोंकणी में भाविन और कलावंत |

देवदासी यानि सर्वेंट ऑफ़ गॉड | देवदासी बनने का मतलब होता था भगवान या देव की शरण में चले जाना | उन्हें भगवान की पत्नी समझा जाता था| इसके बाद वे किसी जीवित इंसान से शादी नहीं कर सकती थी | आपको संपूर्ण जीवन अपना भगवान के सेवा और उनके चरणों मे समर्पित कर देना है | समाज का कोई भी सदस्य इनसे शादी नहीं करता है क्योंकि वो जानते है ये अब भगवान के चरणों मे समर्पित हो गई है और इनसे विवाह करना उचित नहीं होगा और वो भगवान के कोपभाजन का शिकार नहीं बनना चाहते है |

देवदासियों के प्रकार -

देवदासियों के की प्रकार विभिन्न ग्रंथों मे देखने को मिलते है | देवदासियों का मुख्य कार्य था मंदिर की साफ - सफाई उसका रख रखाव दीप प्रज्वलन, पवित्र ढंग से रहते हुये मंदिर के सभी आवश्यक कार्यों का निष्पादन करना | इन कार्यों के आधार पर प्राचीन हिन्दू वैदिक शास्त्रों के अनुसार इन्हें ७ वर्ग में विभाजित किया गया है -

1. दत्ता - कुछ ऐसी देवदासी होती थी जो मंदिर में भक्ति हेतु स्वतः अर्पित हो जाती थी | इन्हें देवी का दर्जा दिया जाता था और इन्हें मंदिर के सभी मुख्य कर्म करने की अनुमति होती थी | इनका मंदिर एवं समाज मे बहुत इज्जत होता था | यह सेवा भाव से मंदिर के कार्यों को करते हुए अपना जीवन ईश्वर के चरण मे सपमर्पित कर देती थी |
2. विक्रीता - ये वो देवदासियाँ होती थी जो खुद को सेवा के लिए मंदिर प्रशासन को बेच देती थी, इन्हे सेवा के लिए लाया जाता था अत इनका काम साफ - सफाई आदि का होता था | ये पूजनीय नहीं होती थी | ये बस मंदिर की श्रमिक होती थी |
3. भृत्या - जो खुद के परिवार के भरण - पोषण के मंदिर में दासी का कार्य करती थी | इनका नृत्य आदि करके अपना पालन - पोषण करना होता है |

4. भक्ता - जो सेवा भाव में पारिवारिक जिम्मेदारियों का निर्वहन करते हुए भी मंदिर में देवदासी का कार्य करती थी | ये मंदिर की समस्त कार्यों को करने लिए होती थी |
5. हृता- जिनका दूसरे राज्यों से हरण करके मंदिर को दान कर दिया जाता था | इनको मंदिर प्रशासन अपनी सुविधा अनुसार कर्म करता था | इनकी गणना तो देवदासियों में होती थी वास्तव में ये गुलाम थे |
6. अलंकार - राजा और प्रभावशाली लोग जिन कन्याओं को इसके योग्य समझते थे उसे मंदिर प्रशासन को देवदासी बनाकर देते थे | उन राजाओं और प्रभावशाली व्यक्तियों का मंदिर को दिया गया उपहार होती थी|
7. नागरी - ये मुख्यतया विधवाओं, वेश्याओं और दोषी होते थे, जो बस मंदिर के शरण में आ जाते थे | इनका मंदिर और समाज मे कोई विशेष स्थान नहीं होता है |

मुख्यत: दत्ता, भक्ता और अलंकार ही मंदिर की देवदासियाँ होती थी जबकि नागरी, हृता, बिक्रीता और भृत्या अपने स्वार्थ के लिए मंदिर से जुड़ती थी और जहाँ मुख्य देवदासियों को समाज एवं मंदिर में आने वाले दर्शनार्थी श्रध्दा और भक्ति की दृष्टि से देखते थे वही अन्य चारों को हेय की दृष्टि से देखा जाता था |

देवदासियों की समस्याऐं -

देवदासी प्रथा जब अपने प्रारम्भिक दौर में था तो उस समय देवदासी ऊंची जाति की पढ़ी लिखी विदुषी महिला होती थी, जो वास्तविक रूप से अपना जीवन ईश्वर की सेवा में समर्पित करती थी | मंदिरों में पुजारी भी उसे श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे | समाज भी उन्हें यथोचित सम्मान देता था | परन्तु बीतते समय के साथ यह प्रथा भी अपने वीभत्स रूप को धारण कर धीरे -धीरे कुप्रथा बनता गया | देवदासियाँ नृत्य और संगीत में विशेषज्ञ होती थी | जिस कारण मंदिर के पुजारियों ने देवदासियों के नृत्य और संगीत की सेवा मंदिर में देने अलावा व्यक्तिगत स्तर पर लेने लगे | नृत्य और संगीत के सेवा के अलावा मंदिर के पुजारियों के द्वारा इन देवदासियों से शारीरिक संबंध भी बनाने लगे |

फ्रेंकोइस बर्नियर (१६२०-१६८८) एक फ्रांसिसी चिकित्सक एवं यात्री थे | मुगल काल मे भारत की यात्रा का उनका विवरण, उस समय के इतिहास के बारे में जानने का महत्वपूर्ण स्त्रोत माना जाता है। वे शाहजहां के सबसे बड़े पुत्र शहजादा दाराशिकोह के व्यक्तिगत चिकित्सक थे और दाराशिकोह की मौत के बाद, वे औरंगजेब के दरबार से लगभग एक दशक तक जुड़े रहे। उन्होंने पुरी की यात्रा की थी। बर्नियर के अनुसार, हर साल पुरी में रथयात्रा के पहले भगवान जगन्नाथ का विवाह एक नई युवती से किया जाता था। विवाह की पहली रात, मंदिर का कोई एक पुजारी उसके साथ संभोग करता था। सन् १९२७ में, मोहनदास करमचंद गांधी ने यही बात कही: मुझे यह कहते हुए बहुत शर्मिंदगी महसूस होती है कि हमारे देश के कई मंदिर वेश्यालयों से अलग नहीं | इन संबंधों को धार्मिक और पवित्र ठहराने के लिये कहने लगे की देवदासियों और उनके बीच सम्बन्ध स्थापित करने से उनके और भगवान के बीच संपर्क स्थापित होता है | देवदासियों को न सिर्फ इन पुजारियों से सम्बन्ध स्थापित करना होता था बल्कि इसके अलावा उन्हें मकान मालिक और देवताओं के सम्बृद्ध भक्तों को भी सेवा देना पड़ता था |

धार्मिक अंध- विश्वास के नाम पर छोटी -छोटी बच्चीयों को देवदासी बना दिया जाता है || उसे धर्म के नाम पर दलदल में धकेल दिया जाता है | उनकी मासूमियत को छीनकर उन्हें समय से पहले परिपक्व होने के लिये मजबूर कर दिया जाता है | उनकी इच्छा पर अंकुश लगा दिया जाता है | ये वही कार्य करते थे जो मंदिर के पुजारियों द्वारा उसे दिया जाता था | कुछ देवदासियां अन्य आम जनो से भी सम्बन्ध बनाकर प्राप्त धनराशि को मंदिर में समर्पित कर देती थी | धीरे -धीरे ये देवदासियां जब मंदिर से उपेक्षिता का शिकार होती थी उनकी मूलभूत आवश्यकत कि पूर्ति नहीं होती थी, तो ये वेश्यावृत्ति को अपनाने लगी | ये देवदासियां चाह

कर भी दूसरी शादी नहीं कर सकती थी क्योकि इनका विवाह एक बार देवता से हो चूका रहता है जिस कारण ये जीवित व्यक्ति से फिर से शादी नहीं कर सकती थी | जब से कम उम्र में देवदासी बन जाती थी तो इनके साथ कम उम्र में ही पुजारियों द्वारा शारीरिक सम्बन्ध बना लिया जाता था | ये ३०-३५ वर्ष के होने पर उपेक्षा का होने लगाती थी जिस कारण ये वेश्यावृत्ति के व्यवसाय को अपना लेती थी | कम उम्र में ही शारीरिक सम्बन्ध बनाने के कारण ये अनेक यौन सम्बंधित रोग का शिकार हो जाती थी | एड्स जैसी खतरनाक बीमारियां जब गंभीर रूप धारण कर लेती थी तो गरीबी और लाचारी एवं उपेक्षिता के रूप में तिल- तिल कर मरना पड़ता था | एक बार ये अगर यौन संबंधित संचारी रोग से ग्रसित हो जाती थी तो इनके साथ संबंध स्थापित करने वाले लोगों के माध्यम से यह धीरे-धीरे संपूर्ण समाज मे फैल जाता है, जहां - जहां वे जाते थे | देवदासियों के सम्बन्ध में एक और गंम्भीर समस्या सम्पूर्ण विमर्श में उभर कर सामने आता है | वह यह है की यौन सम्बन्धों से कभी -कभी गर्भ भी ठहर जाता था| उन्हें उन बच्चों को जन्म भी देना पड़ता था अब प्रश्न यह उठता है की इन बच्चे को समाज में वह अधिकार व सम्मान कैसे मिले जो एक बच्चे को मिलाना चाहिए | इन नाजायज बच्चे को अधिकार दिलाने एवं समाज में जागरूकता फ़ैलाने के लिए काम करने वाली संस्था पोराट संघम के अध्यकक्ष लक्ष्मम्मा कहती है की इन सारे नाजायज बच्चे का डी. न. ए टेस्ट करवाया जाये ताकि उनके पिता का पता लगा सके और उनकी संम्पति में इन बच्चे को भी हिस्सा मिल सके | ऐसा करने पर किसी भी महिला का देवदासी के नाम पर पुरुष शोषण नहीं करेगा| यौन संबंध से स्थापित नाजायज बच्चों के लालन - पालन मे इन्हे और भी समस्याओं का सामना करना पड़ता था | एक ओर जहां इन्हे स्वयं के मूलभूत आवश्यकता के लिए दर बदर की टोकर खानी पड़ती थी वही दूसरी ओर बच्चा होने पर उसके लालन - पालन के लिए इन्हे और भी संघर्ष करना पड़ता है | उम्र के आखिरी पड़ाव पर यह वेश्यावृत्ति जैसे व्यवसाय को भी नहीं कर पाती है तब इन्हे और भी समस्या का सामना करना पड़ता है |

निष्कर्ष -

निष्कर्ष के तौर पर हम यह कह सकते है की एक लम्बे समय से देवदासी प्रथा हमारे समाज मे अपनी पकड़ बनाए बैठा है | देवदासी प्रथा के आड़ मे धर्म के नाम पर स्त्री का शोषण किया जा रहा है | कम उम्र मे ही उन्हे अनैतिक यौन संबंधों का सामना करना पड़ता है | हम अतीत को तो नहीं सुधार सकते है परन्तु वर्तमान में जरूर सुधार सकते है जहाँ आज स्त्री जीवन के सभी क्षेत्र में सफलता के मुकाम को हासिल कर रही है वही कुछ प्रथा के नाम पर स्त्री को आगे बढ़ने से रोका जा रहा है | उन्हें वो सभी अधिकार दिलाने का प्रयास सरकार और समाज को करना चाहिए जिससे वो अपना जीवन मजबूरी से नहीं बल्कि सम्मानपूर्वक अपना जीवन निर्वाह कर सके | एक स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए यह आवश्यक है की समाज मे सभी वर्ग को उनका यथोचित स्थान मिले | इस नारकीय प्रथा से महिलाओं को बाहर निकालने के लिए बम्बई, मद्रास, कर्णाटक, आंध्र प्रदेश, गोवा एवं भारत सरकार ने इस प्रथा पर अधिनियम लाकर इसे रोकने का एक सकारत्मक कदम उठाया है | सरकार के आलावा अन्य संस्थाओं के द्वारा इनके पुनर्वास का प्रयास किया जा रहा है | वर्तमान समय के यह भी आवश्यक है की जो स्त्री इस प्रथा के बाद पुनर्वास के बाद एक सम्मानपूर्वक जीवन जीना चाहती है | समाज के लोग उनका सहयोग करे | उन्हे हेय की नजर न देखे बल्कि उनके प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखे |

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1. Sathyabama, K, 1998. Mechenzie Tamil Chuvadikal Chuttum Makkal Valviyal (unpublished Ph.D thesis). (in Tamil). Thanjavur: Tamil University.
2. Swaminathan, A. 1992. Tamilaka Varalarum Panpadum. (in Tamil). Chennai: Deepa Pathppakam.

3. Orr, Leslie. C. 2000. Donors, Devotees and Daughters of God: Temple Women in Medieval Tamilnadu. Oxford: Oxford University Press.
4. Saskia C. Kersenboom- Story. 1987. Nityasumangali. Delhi: Motilal Banarsidas.
5. Cush, Denise; Catherine Robinson and Michael York. 2008. Encyclopedia of Religion. London: Routledge.
6. Orr, Leslie. C. 2000. Donors, Devotees and Daughters of God: Temple Women in Medieval Tamilnadu. Oxford: Oxford University Press.
7. Philip, George. March, 2005. A Historical Anatomy of the Evolution of Social Revolution in Travancore (unpublished Ph.D thesis). Kottayam: Mahatma Gandhi University.
8. Vijaisri, Priyadarshini. 2004. Recasting the Devadasi Patterns of Sacred Prostitution in Colonial South India. New Delhi: Kanishka Publishers, Distributors
9. Singh, A.K. 1990. Devadasis System in Ancient India. Delhi: H.K. Publishers and Distributors.
10. मिश्र, उर्मिला प्रकाश.२००२.प्राचीन भारत में नारी .मध्य प्रदेश. मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी.
11. वर्मा,कल्पना ,२०११. स्त्री विमर्श: विविध पहलू .इलाहाबाद , लोकभारती पुस्तक ब्रिक्रेता.

मुगल काल में शिक्षा के उद्देश्य का अध्ययन

कौशल किशोर*
डॉ. शत्रुघ्न कुमार पाण्डेय**

शिक्षा एक ऐसा विवेक है जो मनुष्य को अच्छे और बुरे हित और अहित मंगल एवं अमल शुभ और अशुभ आदि तत्वों में अंतर स्थापित कर सत्यम शिवम और सुंदरम का ज्ञान करता है। शिक्षाविदों ने इस शाश्वत धारणा को स्वीकार करते हुए प्रत्येक युग में प्रशासनिक और सामाजिक आवश्यकता के अनुरूप अपने शब्दों को ढाल कर शिक्षा के विभिन्न परिभाषाएं की है। प्रत्येक युग में लक्ष्य बदले हैं प्रत्येक समाज और प्रशासन ने अपने बालक बालिकाओं के लिए संस्कृति और समय की मांग के अनुसार बदले हुए संदर्भ में शिक्षा की व्यवस्था की प्राचीन काल में आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति और आत्मा की उन्नति को शिक्षा का लक्ष्य माना जाता था। मुसलमान के आगमन और मुगल राज्य की स्थापना के साथ ही शिक्षा के उद्देश्य और व्यवस्थाओं में परिवर्तन आया था।

मध्यकालीन शिक्षा अधिकतर दार्शनिक और सूफियों के अधीन थी। अतः स्वाभाविक है कि तत्कालीन शिक्षा में धर्म का प्रभुत्व अधिक था। मुस्लिम शिक्षा का आधार धर्म था फलस्वरूप मस्जिद से संबद्ध मकतब, सूफी संतों की खानकाहों, दायरें एवं मदरसों द्वारा शिक्षा प्रदान की जाती थी। इस्लामी शिक्षा के प्रमुख आधार स्तंभ थे कुरान, हदीस, शरीयत,सुनत और कयास। इन ग्रंथो में वर्णित संदेश ही इस्लामिक शिक्षा के उद्देश्य थे। संपूर्ण मुस्लिम शिक्षा का उदगम कुरान ही माना जाता है कुरआन शक "करा" से बना है। इसका अर्थ है प्रज्ञा यानी ज्ञान। संपूर्ण इस्लामिक शिक्षा कुरान में वर्णित पैगंबर के संदेशों के परितः घूमती है। पैगंबर के देवीय संदेशों के जो उद्देश्य है, वह मुस्लिम शिक्षा के उद्देश्य है। पैगंबर के देवी संदेशों को हदीस में संकलित किया गया है।इसमें मानवीय जीवन के प्रत्येक क्रियाकलापों का विवरण संग्रहित है। शरीयत मुसलमानो के जीवन से संबंधित समस्त व्यवहारों को नियमबद्ध संहिता है। जिसका अनुसरण करना मुस्लिम धर्म के अनुयायियों का धर्म था।

मोहम्मद साहब ने कहा है कि मेरे सभी आज्ञाकारी पुरुषों एवं नारियों के लिए ज्ञान प्राप्त करना अति आवश्यक है। इस्लाम धर्म ने सदैव ही कुरान हदीस और ज्ञान विज्ञान के गहन अध्ययन तथा शिक्षा प्रसार पर बोल दिया है कुरान के अंश "सूरा-इ-करा" में मोहम्मद साहब ने बताया है। की कलम स्याही और कागज यह तीन उपकरण समग्र रूप से शिक्षा की प्राप्ति एवं ज्ञान के प्रसार हेतु मूल्यवान है।

शिक्षा प्राप्ति एवं विभिन्न विषयों का ज्ञान इस्लाम में धार्मिक कर्तव्य के रूप में अपनाया गया इस्लाम धर्म की या मान्यता रही है। कि ज्ञान की मनुष्य का सर्वोत्तम आभूषण और दवात ही स्याही मां के रक्त से भी अधिक पवित्र है।

इस्लाम धर्म में हर सच्चे मुसलमान के लिए शिक्षा अनिवार्य है। कहा गया है कि ज्ञान रेगिस्तान में एकांत में साथी दुख में सहानुभूति देने वाला सुख का द्वार है ,मित्रों के बीच में शोभा बढ़ाने वाला है तथा शत्रुओं से रक्षा करने वाला है। इसके द्वारा सांसारिक तथा स्वर्गीय सुखों की प्राप्ति होती है।2 मोहम्मद साहब ने कहा है की मां-बाप द्वारा बच्चों को दी जाने वाली सभी बेटों में शिक्षक की भेंट सबसे उत्तम है। उन्होंने एक स्थान पर तो यहां तक कहा है कि विद्यार्थियों की कलम की स्याही शहीदों के खून से भी अधिक पवित्र है। कुरान के प्रारंभिक शब्दों में ही ज्ञान का उल्लेख है। आदम को सबसे पहले जो काम दिया गया, वह था- खुदा के

* पीएचडी स्कोलर विनोबा भावे विश्वविद्यालय, हजारीबाग, झारखण्ड
** सहायक प्रोफेसर संत कोलंबस कोलेज, हजारीबाग, झारखण्ड

नाम का ज्ञान। इसी ज्ञान के कारण आदम फरिश्तों से ऊंचा हो गया। मोहम्मद साहब ने अपने अनुयायियों को शिक्षा प्राप्त करने का आदेश देते हुए कहा है कि हर मुसलमान को, वह चाहे पुरुष हो या स्त्री, ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, भले ही उसे इसके लिए चीन की ही यात्रा क्यों न करनी पड़े अर्थात कितने ही दूर क्यों न जाना पड़े।3 अतः शिक्षा की व्यवस्था करना उचित उतने ही "सबाब" का काम माना गया है जितना मस्जिद बनवाना, पर भारत में कट्टर मुस्लिम शासको द्वारा मुस्लिम शिक्षा का प्रचार जिस प्रकार किया गया, उसके पीछे शैक्षिक दृष्टि कम राजनीतिक दृष्टि अधिक थी।

मुसलमानो के आगमन और मुगल राज्य की स्थापना के साथ ही शिक्षा के उद्देश्यों और व्यवस्था में परिवर्तन आया था। उनके आगमन से पूर्व भारत में एक आदर्श तथा समृद्धि शिक्षा प्रचलित थी। सल्तनत युग में मुसलमान शासको ने धार्मिक विद्वेष के कारण भारतीय शिक्षा पर जबर्दस्त प्रहार किए । इन प्रहारों से न केवल हमारी शिक्षा को वरन संस्कृति को भी आघात लगा, किंतु शिक्षा और संस्कृति की जड़े इतनी गहरी और मजबूत थी कि यह प्रहार उन्हें नष्ट नहीं कर सके।

इस्लाम में भी इलम या ज्ञान पर अत्यधिक बल दिया गया है तथा प्रत्येक पुरुष और महिला के लिए शिक्षा प्राप्त करना अनिवार्य माना गया है। हिंदू संस्कृति के समान मुस्लिम संस्कृति में भी विद्वानों को उच्च स्थान और सम्मान मिलता रहा है। विद्या का दान एवं प्रसार एक पवित्र तथा धार्मिक कर्तव्य के रूप में स्वीकार किया गया है ।पैगंबर मोहम्मद साहब ने शिक्षा प्रसार पर बहुत जोर दिया है। उन्होंने कहा है कि ज्ञान का एक अंश सैकड़ो प्रार्थनाओं से अधिक उत्तम है। जन्म से मृत्यु पर्यन्त ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। पैगंबर ने यह भी कहा है कि जो व्यक्ति विद्या तथा विद्वानों का पक्षपोषक है, निश्चय ही वह मेरा सम्मान करता है। मोहम्मद साहब के उन उपदेशों से इस्लाम के अनुयायियों को बड़ी प्रेरणा मिली थी।

मुगलकालीन शिक्षा के लक्ष्य इसमें बदलती हुई राजनीतिक सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों के कारण कुछ परिवर्तनशील परिवर्तन की दृष्टि को अच्छी होती है साथी इस नए वातावरण में संबंधित करने के प्रयास के कारण भी मुगलकालीन शिक्षा के आधारभूत लक्षणों में उदारता के कुछ लक्षण प्रकट होते हैं अकबर के शैक्षणिक सुधारो के कारण भी परंपरागत इस्लामी शिक्षा के लक्षण में एक नया मोड़ आया अब इसका लक्ष्य विश्व धार्मिक से विशुद्ध राजनीतिक हो गया युसूफ हुसैन का मानना है कि 16वीं शताब्दी के उत्तरार्ध भी मुगल कालीन शिक्षा का स्वरूप मात्र राजनीतिक ही नहीं बल्कि सामाजिक भी था क्योंकि मुसलमान भारत में धर्म का प्रचार करना चाहते थे। अतः उसे युग की इस्लामी शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य इस्लाम का प्रचार करना था परंतु यह लक्ष्य को नवीन नहीं था।भारत में मुगलों के आगमन के साथ मुस्लिम शिक्षा के इतिहास में एक नए अध्याय का आरंभ होता है। भारतीय मुस्लिम शासन के संपूर्ण इतिहास में शिक्षा के विषय में दिल्ली के शासको द्वारा भी वैसा प्रोत्साहन नहीं मिला जैसा तैमूर के सही गानों से प्राप्त हुआ मुगल सत्ता अपने प्रभुत्व काल से ही पूर्वी गोलार्ध में दानशीलता के कारण प्रसिद्ध था इस कल के बादशाहों ने दूर-दूर से आए विद्वानों शिक्षाविदों को जो संरक्षक के लिए आए थे उन सभी का स्वागत किया मुगल वंश के सभी बादशाहों हने शिक्षा के विकास में कुछ-न-कुछ ना सहयोग प्रदान किया।

इस्लामी शिक्षा बहुउद्देशीय थी, लेकिन मध्यकाल में इस्लामी शिक्षा का मुख्य उद्देश्य कुरान में वर्णित सिद्धांतों के आधार पर मनुष्य एवं ईश्वर के मध्य के संबंधों को समझना था तथा समस्त मुस्लिम शैक्षणिक गतिविधियां इसी उद्देश्य का प्रतिनिधित्व करते थे यद्यपि इस लक्ष्य को प्राप्त करने के मार्ग एवं स्त्रोत पृथक रहे।२ इस्लामी शिक्षा के पांच उद्देश्य अथवा लक्ष्य माने जा सकते हैं। पैगंबर के अनुसार ज्ञान की खोज करना प्रत्येक मुसलमान का पवित्र कर्तव्य है।अतः इस्लामी शिक्षा का प्रथम उद्देश्य मुसलमानों के में ज्ञान के वृद्धि करना था। इस्लामी शिक्षा का दूसरा उद्देश्य इस्लाम धर्म का प्रचार करना था । इस्लाम का तीसरा उद्देश्य या

लक्ष्य इस्लामी सिद्धांतों के अनुसार सदाचार की एक विशिष्ट प्रणाली का विकास करना था। इस्लामी शिक्षा का चौथा पांचवा अध्यक्ष भौतिक उन्नति करना और राजनीतिक लक्ष्य की पूर्ति करना है।

मुगल बादशाहों ने शिक्षा और ज्ञान के प्रचार प्रसार के लिए बहुत से प्रयास किए मकतब और मदरसे खोले, छात्रवृतियाँ दी,शिक्षण संस्थानों को अनुदान दिए, अपने दरबार में विद्वानों को संरक्षण दिया, वृतियाँ तथा जागीरें और पुस्तकालय स्थापित किए। फलतः शिक्षा के प्रसार के साथ साहित्य का सृजन भी हुआ। इन बिंदुओं का विस्तार से अध्ययन करने के पूर्व मुस्लिम शिक्षा को उद्देश्यों पर दृष्टिपात करना अति आवश्यक है।

पूर्वी देशों में शिक्षा का उद्देश्य धार्मिक व्यक्ति तैयार करना था इस देश की पूर्ति के लिए संपूर्ण शिक्षा के नियम धर्म पर अविलंबित थी प्रत्येक भक्त प्रथम मदरसे में एक मस्जिद होती थी और प्रत्येक मस्जिद में शिक्षण हेतु पृथक से कक्षाएं चलती थी जहां पर धर्म शास्त्रों के अतिरिक्त अन्य विषयों की शिक्षा दी जाती थी ताकि धार्मिक उपदेशों के साथ ही साथ लौकिक शिक्षा पर चलते रहे इन सारे तरीके से व्यक्ति को एक धार्मिक व्यक्ति बनाने की तैयारी की जाती थी ताकि व्यक्ति अपने जीवन में धर्म के आधार पर ही अनुशासित और समाज के प्रति जिम्मेदार व्यक्ति बन सके यह इस्लाम धर्म का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य रहा था।4

मुस्लिम युगीन भारत में लौकिक आध्यात्मिक व्यावसायिक और सैनिक सभी प्रकार की शिक्षा दी जाती थी जिससे छात्रों का मानसिक बौद्धिक और भौतिक स्तर उन्नत हो सके इस प्रकार बालकों का चौथी या सर्वांगीण विकास करना शिक्षा का एक अनुच्छेद इस्लाम सिर्फ व्यक्ति को आध्यात्मिक रूप से विकसित होने पर विश्वास नहीं रखता है बल्कि लौकिक के साथ-साथ व्यावसायिक और सैनिक सभी आधार पर विकास का उद्देश्य मुस्लिम युगीन शिक्षा के प्रमुख उद्देश्यों में नहीं था।

विभिन्न विषयों का ज्ञान करने के साथ अनुशासन मानवता नैतिकता शिष्टाचार सदाचार आदि चारित्रिक गुना के विकास की ओर भी पूरा ध्यान दिया जाता था दूसरे शब्दों में व्यक्तित्व तथा चरित्र का निर्माण करना शिक्षा का एक अन्य मुख्य ध्येय था जिसे हम आज मूल्य के शिक्षा के रूप में देख सकते हैं व्यक्ति को सिर्फ शिक्षित बनाना इस शिक्षा का उद्देश्य नहीं है बल्कि व्यक्ति को मूल्य आधारित शिक्षा देकर एक संस्कारवान व्यक्ति का निर्माण करना मुस्लिम शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य रहा था।

जीवन का निर्माण करना तात्कालिक शिक्षा का प्रमुख आधार था जिससे बालक समाज तथा देश का उपयोगी अंग बन सके अध्ययनाधीन काल में शिक्षा का मुख्य उद्देश्य आत्मा का शोधन करना भी रहा था।5 अब आत्मा का शोधन करना यह शिक्षा भारत की व्यक्ति के लिए नई नहीं थी।क्योंकि मुसलमान के आगमन के पूर्व भी भारत में आत्मा के शोधन पर शिक्षा वैदिक काल से ही भारत में चल रहा था और यह तत्कालीन विश्व के किसी भी अन्य देशों पर इस प्रकार के आत्मा के शोधन पर जोर किसी भी शिक्षा का उद्देश्य नहीं रहा था। यह भी मुगलकालीन शिक्षा के एक अप्रतिम शिक्षा के उद्देश्यों में से एक था।

शासन और शासित दोनों ही बिना किसी धार्मिक और जाति भेदभाव की शिक्षा प्राप्त करते थे पाठ्यक्रम में हिंदू और मुस्लिम दोनों वर्गों के राष्ट्रीय साहित्य का समावेश था शिक्षा देने की दृष्टि में अमीर और निर्धन छात्रों में भेदभाव नहीं था। प्रशासनिक कला का ज्ञान सभी को प्रदान किया जाता था और कोई भी व्यक्ति अपनी योग्यता तथा प्रतिभा से बादशाह के अधीन उच्चतम पद प्राप्त कर सकता था । यह तथ्य इस बात का प्रतीक है कि शिक्षा का उद्देश्य राष्ट्र निर्माण भी था। अकबर प्रथम मुगल शासक था, जिसने भारत में हिंदू और मुस्लिम प्राजाजनों में सामंजस्य स्थापित करने हेतु प्रत्येक स्तर पर शिक्षा प्रणाली को राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान करने का प्रयास किया था।6

शिक्षा का उद्देश्य इस्लाम के अनुयायियों में ज्ञान का आलोक फैलाना था। मोहम्मद साहब ने कहा था कि प्रत्येक मुसलमान को ज्ञान प्राप्त करना चाहिए, क्योंकि ज्ञान अमृत के समान हैं।उन्होंने इस्लाम के बंदों को कर्तव्य और अकर्तव्य एवं धर्म तथा अधर्म का भेद जानने के लिए ज्ञान प्राप्त करने की प्रेरणा दी।7

शेख अब्दुल हक, जिसने कई ग्रंथों की रचना की थी और जो अकबर तथा जहांगीर के समकालीन था,ने अपनी पुस्तक "अखबरुल अखयार" में छात्रों के मध्य होने वाले वार्तालाप का उल्लेख किया है, जिससे तत्कालीन शिक्षा के उद्देश्यों पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।वार्तालाप के समय सभी छात्र एक दूसरे से शिक्षा ग्रहण करने के उद्देश्य पूछ रहे थे। कुछ छात्रों ने बहाना बनाते हुए और गंभीरता न दिखाते हुए कहा कि अध्ययन करने के पीछे उनका मकसद दैविक और आध्यात्मिक शक्ति को समझने की सोच पैदा करना मात्र है। जबकि अन्य छात्रों ने स्पष्ट रूप से निडरतापूर्वक कहा कि उनके अध्ययन का उद्देश्य भविष्य में सांसारिक परिलाभ प्राप्त करना है। जब छात्रों ने मुझसे पूछा तो मैंने कहा कि निरंतर अध्ययन करने का मेरा ध्येय महान विद्वानों के विचारों का ज्ञान प्राप्त करने के साथ भूतकालीन संज्ञान की जानकारी करना है। इसके अतिरिक्त महान विद्वानों के द्वारा बतलाई इन विधियों की जानकारी करना है,जिनसे उन्होंने अपने अंतर्ज्ञान से जीवन के वास्तविक सत्य को समझा और बौद्धिक समस्याओं को हल किया।

संदर्भ

- जियाउद्दीन देसाई ,भारत में इस्लामी शिक्षा के केंद्; नई दिल्ली ;1984
- एस.एम.जफर, एडुकेशन इन मुस्लिम इंडिया,नई दिल्ली,1936
- डॉ बी.के.सहाय, एडुकेशन एंड लर्निंग अंडर दि ग्रेट मुगल्स
- जौहरी और पाठक, भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ,आगरा,2012
- डॉ बी.के.सहाय, एडुकेशन एंड लर्निंग अंडर दि ग्रेट मुगल्स
- अमीर अली, स्पिरिट ऑफ इस्लाम
- प्रसाद,ईश्वरी,लाइफ एंड टाइम्स ऑफ हुमायूँ (बंबई,1955)
- बाबर,बाबरनामा,अँग्रेजी(अनु.ए॰एस.बेवरीज़)भाग-1,(दिल्ली,1970)
- सहाय,बी.के.,एडुकेशन एंड लेर्निंग अंडर द ग्रेट मुग़ल,(बंबई,1968)
- तबकात-ए-अकबरी (अनु.बी.डे), भाग-2
- ओझा, पी.एन, मुगलकालीन भारत का सामाजिक जीवन,(नई दिल्ली,1984)
- स्मिथ,वी.ए, अकबर दी ग्रेट मुगल(1542-1605),(नई दिल्ली,1958)

ट्रेड यूनियन आन्दोलन के प्रति दृष्टिकोण

डॉ अशोक कुमार मिश्रा*

नौकरी एवं व्यवसाय में सभी व्यक्ति कठोर परिश्रम और प्रतिस्पर्धा के माध्यम से प्रवेश करते हैं। नौकरी स्वीकार करने के साथ में कार्य परिकों की बाध्यतायें उनके सम्क्ष आ जाती है। आधुनिक शिक्षा-प्रशिक्षण और मूल्य व्यक्ति को सफलता प्राप्त करने के लिए, आगे बढ़ने के लिए गतिशील होने के लिए और मनो वैज्ञानिक, भौतिक तथा सामाजिक उपलब्धियों को प्राप्त करने के लिए निरन्तर प्रेरित करते हैं। दूसरी ओर संगठन की संरचना एवं उसकी संस्कृति औपचारिक नियमों व निर्देशों से प्रतिबन्धित रहती है व्यक्ति के अपनी इच्छाओं की पूर्ति के वैकल्पिक माध्यम बहुत कम हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में कुछ व्यक्ति व्यैक्तिक स्तर पर अपने परिवेश के साथ अपनी इच्छाओं व आवश्यकताओं के साथ सम्बन्ध स्थापित करते हैं। जबकि कुछ व्यक्ति संगठनों के निर्माण के माध्यम से इस सन्तुलन को प्राप्त करने का सामूहिक रूप से प्रयास करते हैं। सभी व्यक्ति पद और सत्ता के पिछे नहीं दौड़ते हैं लेकिन परिस्थितियां चुनौतियां स्वीकार करने के लिए बाध्य करती है एवं कभी-कभी न चाहते हुए भी व्यक्ति नेतृत्व पद के उत्तरदायित्वों को संभालता है। कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं जो अपने लाभ-हानि की गणना करके विवेकपूर्ण आधार पर यूनियनों के साथ अपने को सम्बन्धित कर लेते हैं। श्वेतवसन यूनियनों में भी यही स्थिति पायी जाती है एवं नेताओं के विचार यूनियनों के साथ सम्बद्धता के प्रति भिन्न-भिन्न प्रकार के मिलते हैं। प्रस्तुत अध्याय में यह जानने का प्रयास किया गया है कि वर्तमान नेता किस प्रकार की यूनियनों के साथ सम्बन्धित है। उनकी अपनी रूचि इनमें किस प्रकार की है तथा उनके ट्रेड यूनियन आन्दोलनों के साथ जुड़ने से परिवार की क्या प्रतिक्रिया है।

संगठनों के सम्बन्ध : हर संगठन किसी न किसी राजनी तिक पार्टी से जुड़ी होती है और ये संगठन राजनीतिक पार्टीयों के निर्देशों पर ही चलती है। उनके कहने पर आन्दोलन, हड़ताल आदि करते हैं।

सारणी संख्या: 1

ट्रेड यूनियनों में कौन-कौन सी यूनियनें काम कर रहीं का विवरण :

संगठन	आवृत्ति	प्रतिशत
आल इण्डिया इन्श्योरेन्स इम्प्लाइज एसो सियेशन	160	53.3
आल इन्डिया लाइफ इन्श्योरेन्स इम्प्लाइज	75	25
नेशनल आर्गनाइजेशन आफ इन्श्योरेन्स वर कर्त	25	8.3
आल इन्डियाएल. आई. सी. इम्प्लाइज फेडरेशन	20	6.7
आल इन्डिया नेशनल लाईफ इन्श्योरेन्स इम्प्लाइज फेडरेशन	12	4
एल. आई. सी. हायर ग्रेड असिस्टेन्ट एसो सियेशन	8	2.6
योग	**300**	**100**

सारणी संख्या 1 के अध्ययन से यह पता चलता है कि सबसे अधिक नेता आल इन्डिया इन्श्योरेन्स इम्प्लाइज एसोसियेशन से सम्बन्धित है जिसमेंइनका प्रतिशत लगभग 53.3 प्रतिशत है. इसके बाद आल इन्डिया लाईफ इन्स्योरेन्स इम्प्लाइज ऐसोसियेशन का नम्बर आता है जिसमें कि 25 प्रतिशत र नेता है. नेशनल आर्गनाइजेशन आफ इन्स्योरेन्स वर्कस से सम्बन्धित नेता 8.3 प्रतिशत है, आल इन्डिया एल.आई. सी. इम्प्लाइज फेडरेशन से सम्बन्ध रखने वाले केवल 6.7 प्रतिशत हैं, आल इन्डिया नेशनल लाईफ इन्स्योरेन्स इम्प्लाइज फेडरेशन में 4 प्रति. नेता हैं, सबसे कम नेता एत. आई. सी. हायर ग्रेड असिस्टेन्ट एसोसियेशन केवल 2.6 प्रतिशत हैं ।

* प्राचार्य, वाल्थर डिग्री कॉलेज, रामपुर, जौनपुर

अतः हम कह सकते हैं कि इस यूनियन में सबसे शशक्त आल इन्डिया इन्स्योरेन्स इम्प्लाइज एसोसियेशन की है जो कि सबसे ताकतवर है एवं बैंकों में आल इन्डिया बैंक आफिसर्स एसो सियेशन है ।

सारणी संख्या : 2

राजनीतिक पार्टीयों से सम्बन्ध रखने वाले नेता संगठन नेतृत्व :

श्रम संगठन	आवृत्ति	प्रतिशत
इन्टक	86	28.6
स्वतंत्र	58	19.3
पी0 एस0 पी0	72	24.0
जे0 एस0	46	15.4
एस0 पी0	18	6.0
आर0 एस0 पी0	20	6.7

सारणी संख्या 2 के अध्ययन से यह पता चलता है कि तबसे अधिक नेता यूनियनै इन्टक से सम्बन्धित हैं जिनका प्रतिशत 28.6 है, कुछ नेता यूनियनें ऐसी हैं जो कि किसी से सम्बन्ध नहीं रखती हैं उनकी संख्या 19.3 प्रतिशत है, पी०एस०पी० से सम्बन्ध रखने वाली यूनियनों की संख्या 24 प्रतिशत है, जे०एस० से सम्बन्धं रखने वाली यूनियनें 15.4 प्रतिशत है, एस०पी० से सम्बन्ध रखने वाली यूनियनें 6 प्रतिशत व आर०एस०पी० से सम्बन्ध रखने वाली यूनियनें 6.7 प्रतिशत है

सारणी संख्या : 3

ट्रेड यूनियन आन्दोलनों में आप कितने समय से जुड़े हैं :

कितने वर्षों से	आवृत्ति	प्रतिशत
4 वर्षो से	85	28.3
5–10 वर्षों से	98	32.7
11–16 वर्षों से	80	26.7
17 और उसके ऊपर	37	12.3
योग	**300**	**100**

सारणी संख्या 3 के अनुसार नेता संगठनों में काम करने वाले नेताओं का विवरण है जिसमें कि 4 वर्षों से जुड़े हुए नेताओं की संख्या 28.3 प्रतिशत है एवं 5-10 वर्षों के बीच में श्रमिक्त संगठनों से जुड़े हुए व्यक्तियों की संख्या 32.7 प्रतिशत है। 11-16 वर्षों से जुड़े 26.7 तथा 17 वर्षों से उपर जुड़े हुए नेताओं की संख्या 12.3 प्रतिशत है ।

सारणी संख्या: 4

ट्रेड यूनियन आन्दोलन में रूचि सम्बन्धित दृष्टिकोन :

रुचि	आवृत्ति	प्रतिशत
कोई नहीं	52	17.3
संगठन को बढ़ाने में	87	29.0
संगठन को मजबूत करने में	68	22.7
संगठनात्मक कार्य	44	14.6
सामान्य कार्य	38	12.7
सक्रिय सदस्य के रूप में	11	9.6
योग	**300**	**100**

सारणी संख्या 4 के अनुसार ट्रेड यूनियन आन्दोलन में रूचि लेने सम्बन्धित दृष्टिकोण इस प्रकार है। ट्रेड यूनियन में एकदम रूचि न लेने वाले लोगों की संख्या 17.3 प्रतिशत है, संगठन को बढ़ाने में रूचि मेने वाले लोगों की संख्या 29 प्रतिशत एवं संगठन को मजबूत करने में 22.7 प्रतिशत लोग रूचि लेते हैं। ट्रेड यूनियन आन्दोलनों को सशक्त करने में संगठनात्मक कार्य करने का प्रतिशत 14.6 है, संगठन के आन्दोलनों में कुछ सामान्य कार्य होते हैं जिनका कि प्रतिशत 12.7 है एवं सक्रिय सदस्य के स्म में कार्य करने वाले लोगों का प्रतिशत 9.6 है।

सारणी संख्या: 5

ट्रेड यूनियन आन्दोलन में उत्तरदाताओं के प्रदेश के उद्देश्य:

उद्देश्य	आवृत्ति	प्रतिशत
अधिकारों की रक्षा करना	93	31
संगठन को मजबूत करना	67	22.7
अन्याय का सामूहिक विरोध	48	16.0
जन सेवा	42	14.0
ट्रेड यूनियन को मजबूत करना	50	16.7
योग	**300**	**100**

सारणी संख्या 5 के अवलोकन से यह पता चलता है कि ट्रेड यूनियन में श्रमिकों के जाने से उनके संगठन को कितनी मजबूती मिलती है। प्राप्त उत्तरदाताओं के आंकड़े यह बताते हैं कि ज्यादातर लोग अपने अधिकारों की रक्षा करने के. लिए ही ट्रेड यूनियन में जाने का उददेश्य रखते हैं प्राप्त आंकड़े जिनका प्रतिशत भी 31.0 है यही बताते हैं, संगठन को मजबूत करने का प्रतिशत 22,3 है एवं ट्रेड यूनियन को मजबूत करने में इनका प्रतिशत 16.7 है, ट्रेड यूनियन के माध्यम से जनसेवा करना भी एक कार्य है इनका प्रतिशत 14.0 व ट्रेड यूनियन के नेता अपने उपर हो रहे अन्यायों का सामूहिक विरोध करने के लिए भी इनका उद्देश्य है इनका प्रतिशत 16.0 है।

सारणी संख्या: 6

ट्रेड यूनियन आन्दोलन के कमजोर होने के कारण:

कारण	आवृत्ति	प्रतिशत
राजनीतिक प्रभाव	96	32
बाहरी नेता गिरी	0	0
आंतरिक संगठनात्मक कलह	69	23
तकनीकी कमजोरिया	54	18
वैधानिक पर अविश्वास	47	15.7
कम करने वालों का अशिक्षित होना	34	11.3
योग	**300**	**100**

सारणी संख्या 6 के अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि ट्रेड यूनियन आन्दोलन के कमजोर होने के कारणों में प्रमुख कारक राजनीतिक है । प्राप्त उत्तारदाताओं के आंकड़ों को देखने से यह पता चलता है कि 32.0 प्रतिशत उत्तरदाता राजनीतिक प्रभाव को कारण मानते हैं, 23 प्रतिशत उत्तरदाता आन्तरिक संगठनात्मक कलह को जिम्मेदार मानते हैं, 17 प्रतिशत लोग तकनीकी स्प से अध्मता को ही इसको आंशिक कारण मानते हैं, 15.3 प्रतिशत उत्तरदात वैधानिकता पर अधिवास करते हैं एवं 11.3 प्रतिशत उत्तरदाता को काम करने का ज्ञान ही नहीं है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि ट्रेड यूनियन आन्दो के कमजोर होने के कारणों में मुख्य कारण राजसी तिक प्रभाव ही जिम्मेदार है

सारणी संख्या : 7

ट्रेड यूनियन नेतृत्व में पक्षपात के प्रति दृष्टिकोण :

नेतृत्व	आवृत्ति	प्रतिशत
हां	47	15.7
नहीं	253	84.3
योग	**300**	**100**

सारणी संख्या 7 में ट्रेड यूनियन नेतृत्व में पक्षपात होता है या नहीं इसके सम्बन्ध में प्राप्त उत्तरदाताजों का मत इस प्रकार है। 15.7 प्रतिशत उत्तरदाता ट्रेड यूनियन नेतृत्व में पक्षपात के सम्बन्ध हां में उत्तर देते हैं, परन्तु इनकी संख्या काफी कम है जबकि 84.3 प्रतिशत उत्तरदाता कहते हैं कि ट्रेड यूनियन के नेतृत्व में किसी प्रकार का पक्षपात नहीं है ।

व्यवसाय में आने के पश्चात कर्मचारी संगठन की जावयकताओं बाजरे एवं अपनी आवयकता एवं योग्यताओं के अनुस्प तनाव महसूस करता है और सामूहिक रूप से संगठित होकर अपने अधिकारों की रक्षा के लिए संघर्ष करने की इच्छा जागृत होती है, लेकिन सभी व्यक्ति ऐसा नहीं कर पाते हैं। कुछ थोड़े से लोग ट्रेड यूनियन की मानसिकता के अनुस्प होते हैं । प्रस्तुत अध्ययन में देखा गया कि वर्तमान यूनियन नेता पिछले आठ से दस वर्ष से इस आन्दोलन से जुड़े हुए हैं, इस आन्दोलन से जुड़ने के पिछे उनका इरादा अपने स्वयं के विचारों की रक्षा करना एवं अपने पद पर बने रहकर सदस्यों मैं उनके अधिकारों की रक्षा करना है। ये नेता इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि यूनियन आन्दोलन को मजबूत रखना कर्मचारियों के हितों में है। यूनियन आन्दोलनों के कमजोर होने के प्रति उनका मानना है कि आन्तरिक तनाव और कई संगठनों का हस्तक्षेप एवं बह यूनियनवाद इसकी कमजोरी के प्रमुख कारण है। लेकिन इसके लिए नेता भी कम जिम्मेदार नहीं है। अपने व्येक्तिक स्वार्थ के हो में नेता प्रबन्धकों से गुप्त समझौते कर लेते हैं एवं सदस्यों के साथ विवास्थात होता है। यूनियन द्वारा सार्वजनिक एवं व्यक्तिक हितों की रक्षा को परिवार के व्यक्ति भी बुरा नहीं मानते हैं, चल्कि उनका दृष्टिकोण उदासीनता का रहता है। इन नेताओं में अपने कार्य के प्रति लगाव है और वे पुनः चुनाव लड़कर इस पद पर आने की इच्छा रखते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है ।कि यह कार्य ऐच्छिक रूप से सोच समझकर किया गया है एवं नेता पट पर कार्य करने वाले इन व्यक्तियों में वह प्रेरणा व इच्छा निहीत है जो उन्हें नेता पद की जिम्मेदारियां लेने के लिए शक्ति व प्रोत्साहन प्रदान करती है ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Kennedy, W. - "Bank Management", Bankers Publishing Co., Boston, 1969.
2. Kennedy, Van. D. "Union, Employee and Government of India", Manaktalas, Bombay, 1966.
3. Mathur, A.S. & Mathur, J.S. "Trade Union Movement in India", Hind Sahitya Press, Allahabad, 1957.
4. Mast, M.K. "Trade Union Movement: Indian Railways", Keenakshi Prakashan, Maarut, 1969.
5. Mils, C. Wright"White Collar: American Middle Class", Glaxy Book, Oxford, 1956.
6. Mills, C. Wright "White Collar: Black Coated Workers", David Loock Wook, London, 1958.
7. Mirza, M.A. "Workers Participation in Management in India & Abroad", Printwell Publication, Aligarh, 1982.
8. Panandikar, S.G. & Mithani, D.M. "Banking in India", Orient Longman, Delhi 1945.

ग्रामीण एवं शहरी विद्यार्थियों की शारीरिक क्रियाओं पर मानसिक प्रभावः एक तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. अच्छे लाल यादव*

सारांश :

वर्तमान समय में शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान प्रदान करना नहीं रह गया है, बल्कि विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास की ओर बढ़ गया है। इस विकास में शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और भावनात्मक पक्षों का संतुलन आवश्यक होता है। इसमें शारीरिक क्रियाएं–जैसे खेलकूद, योग, व्यायाम, दौड़ केवल शरीर को सशक्त बनाने का माध्यम नहीं हैं, बल्कि यह मानसिक स्वास्थ्य को सुधारने का भी प्रभावी माध्यम हैं।

बढ़ती प्रतिस्पर्धा, परीक्षा का दबाव, भविष्य की अनिश्चितता और सामाजिक अपेक्षाएं विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित कर रही हैं। ऐसे में यह शोध पत्र विद्यार्थियों की मानसिक स्थिति और शारीरिक क्रियाओं के आपसी संबंध का विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

शब्द कुंजी – शारीरिक गतिविधि, मानसिक, विद्यार्थी, खेलकूद इत्यादि

परिचयः

मानव मस्तिष्क में कुछ ऐसे रसायन होते हैं जो मानसिक संतुलन बनाए रखने में सहायता करते हैं। जब कोई व्यक्ति शारीरिक गतिविधियों में संलग्न होता है, तो मस्तिष्क में 'एंडोर्फिन', 'डोपामिन' जैसे रसायनों का स्राव होता है, जो मन को प्रसन्न रखने और तनाव को कम करने में सहायक होते हैं।

खेलों में भागीदारी आत्म–नियंत्रण, सहनशीलता, अनुशासन और टीम भावना जैसे मानसिक गुणों को विकसित करती है। ये गुण न केवल विद्यार्थी जीवन में बल्कि भविष्य के सामाजिक और व्यावसायिक जीवन में भी उपयोगी सिद्ध होते हैं।

पद्धति :

आंकड़ों के स्रोत –

वर्तमान अध्ययन में आंकड़ों के स्रोत के रूप में विदर्भ क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययनरत् सभी विद्यार्थियों (लड़के तथा लड़कियाँ) थे।

जनसंख्या

वर्तमान अध्ययन के लिए विदर्भ क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाले 11 जिलों के माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में 9वीं सं 12वीं कक्षा में अध्ययनरत छात्र व छात्राएँ जनसंख्या हैं।

न्यादर्श की विधि

वर्तमान अनुसंधान कार्य करने के लिए विदर्भ क्षेत्र के 5 जिलों में से प्रत्येक जिले के 6 शासकीय व 6 अशासकीय विद्यालयों को यादृच्छिक न्यादर्श विधि (Random Sampling Method) द्वारा चुना गया। इस प्रकार के प्रत्येक जिले से 12 विद्यालयों को न्यादर्श के रूप में सम्मिलित किया गया था।

प्रत्येक जिले के शासकीय व अशासकीय विद्यालयों में से 3 शहरी एवं 3 ग्रामीण क्षेत्र के विद्यालयों का चुनाव यादृच्छिक न्यादर्श द्वारा किया गया था।

चुने हुए 60 विद्यालयों में से प्रत्येक विद्यालय के 9वीं से 12वीं कक्षा तक के 20 छात्र व 20 छात्राओं को यादृच्छिक न्यादर्श विधि द्वारा न्यादर्श में सम्मिलित किया गया था। इस प्रकार कुल 2400 विद्यार्थियों को न्यादर्श में सम्मिलित किया गया था।

सारणीयन तथा सांख्यिकीय विश्लेषण

विभिन्न प्रश्नावली एवं AAHPER Youth Fitness Test के माध्यम से अनुसन्धानकर्ता ने आँकड़ों को एकत्रित किया।

* असिस्टेंट प्रोफेसर, पं. दीनदयाल उपाध्याय राजकीय महाविद्यालय, सैदपुर, गाजीपुर

आंकड़ों के एकत्रीकरण के पश्चात मार्गदर्शक के मार्गदर्शन में उन्हें सारणी बद्ध किया गया और प्रतिशत, कोईफिशिएन्ट ऑफ कोरिलेशन (r), काई–स्कवेयर (χ^2), मध्यमान, मानक विचलन, तथा टी–वेल्यू जैसी सांख्यिकीय तकनीकों के द्वारा उनका विश्लेषण तथा आकलन किया गया।

काई स्क्वेअर (χ^2) का सूत्र

$$\chi^2 = \sum \left[\frac{(fo - fe)^2}{fe}\right]$$

fo = निरिक्षित बारंबारिता

fe = अपेक्षित बारंबारिता

स्वाधीनता मात्रा (Degree of Freedom)

d.f. = (C – 1) x (R – 1)

C = No. of columns

R = No. of rows

Coefficient of Correlation :

$$r = \frac{\sum xy}{\sqrt{\sum x^2 . \sum y^2}}$$

where,

$\sum xy$ = Sum of product of deviation of group I and group II

$\sum x^2$ = Sum of square of deviation of the group I

$\sum y^2$ = Sum of square of deviation of the group II

Interpretation of Correlation Coefficient

Coefficient (r)	Relationship
.00 to .20	Negligible
.20 to .40	Low
.40 to .60	Moderate
.60 to .80	Substantial
.80 to 1.00	High to very high

टी–मूल्य का सूत्र

मध्यमान (Mean)

$$M = \frac{\sum x}{N}$$

M = मध्यमान

$\sum x$ = प्राप्तांक का जोड़

N = न्यादर्श

मानक विचलन (Stadard Deviation)

$$\sigma = \sqrt{\frac{N\sum x^2 - (\sum x)}{N(N-1)}}$$

σ = मध्यमान

$\sum x$ = प्राप्तांक का जोड़

$\sum x^2$ = प्राप्तांक के वर्ग का जोड़

N = न्यादर्श

स्तरीय त्रुटी (Standard Error)

$$SE_D = \sqrt{\frac{\sigma_1^2}{N_1} + \frac{\sigma_2^2}{N_2}}$$

SE_D = स्तरीय त्रुटी

σ_1^2 = पहले समूह के मानक विचलन का वर्ग़

σ_2^2 = दूसरे समूह के मानक विचलन का वर्ग

N_1 = पहले समूह का न्यादर्श

N_2 = दूसरे समूह का न्यादर्श

मध्यमान का अन्तर (Difference between Mean)

$$D = M_1 - M_2$$

D = दोनों समूहों के मध्यमान का अंतर

M_1 = पहले समूह का मध्यमान

M_2 = दूसरे समूह का मध्यमान

टी – परीक्षण ('t' Value)

$$t = \frac{\text{Difference between two means}}{\text{Standard error ofthe difference}}$$

$$t = \frac{M_1 - M_2}{SE_D}$$

t = 't' मूल्य

$M_1 - M_2$ = दोनों समूहों के मध्यमान का अंतर

SE_D/σ_D = दोनों समूहों के मध्यमान की स्तरीय त्रुटी

स्वाधीनता मात्रा (Degree of Freedom)

$$df = (N_1 - 1) + (N_2 - 1)$$

df = स्वाधीनता स्तर

N_1 = पहले समूह का न्यादर्श

N_2 = दूसरे समूह का न्यादर्श

प्रस्तुत अध्ययन में आंकड़ों को सारणीबद्ध करके उनका सांख्यिकीय विश्लेषण का उसके आधार पर विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। आलेख का प्रयोग करके भी परिणात दर्शाने का प्रयास किया गया है।

मानसिक स्तर के अनुसार विद्यार्थियों का वर्गीकरण

क्र.सं.	स्तर	ग्रामीण	शहरी	कुल	काई–स्क्वेअर (χ^2)
1.	उच्च	498 (20.75)	508 (21.17)	**1006 (41.92)**	**0.189**
2.	मध्यम	384 (16.00)	376 (15.67)	**760 (31.667)**	
3.	निम्न	318 (13.25)	316 (13.17)	**634 (26.42)**	
	कुल	**1200 (50.00)**	**1200 (50.00)**	**2400 (100.00)**	

(कोष्ठक में दिए गए अंक प्रतिशत दर्शाते हैं)

स्वाधीनता मात्रा 2 एवं 0.05 सार्थकता का स्तर पर χ^2 सारणी मूल्य = 5.99

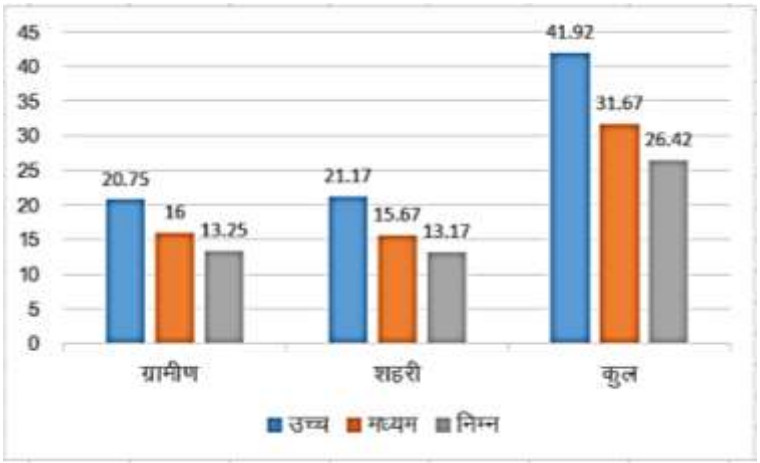

उपरोक्त सारणी में मानसिक स्तर के अनुसार विद्यार्थियों का वर्गीकरण दर्शाया गया है। सारणी से यह पता चलता है कि, कुल विद्यार्थियों में सर्वाधिक 41.92% उच्च मानसिकता स्तर में तथा 31.67% विद्यार्थी मध्यम मानसिकता स्तर में समाविष्ट थे। निम्न मानसिकता स्तर में 26.42% विद्यार्थी दिखाई दिए।

ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र के मानसिकता स्तर की तुलना करने से दिखाई देता है कि, स्वाधीनता मात्रा 2 एवं 0.05 सार्थकता स्तर पर प्राप्त χ^2 मूल्य 0.189 यह मानक सारणी χ^2 मूल्य 5.99 से कम है। इसका अर्थ ग्रामीण और शहरी क्षेत्र के मानसिकता स्तर में सार्थक अन्तर नहीं है।

सारणी से यह भी पता चलता है कि ग्रामीण क्षेत्र के सर्वाधिक 16.00% विद्यार्थी मानसिकता के मध्यम स्तर में, 20.75% उच्च स्तर में तथा 13.25% विद्यार्थी निम्न स्तर में दिखाई दिये। उसी प्रकार शहरी क्षेत्र के सर्वाधिक 15.67% विद्यार्थी मानसिकता के मध्यम स्तर में, 21.17% उच्च स्तर में तथा 13.17% विद्यार्थी निम्न स्तर में दिखाई दिये।

सारणी से यह स्पष्ट होता है कि, ग्रामीण और शहरी क्षेत्र के विद्यार्थियों के मानसिकता स्तर के अनुसार वितरण में सार्थक अन्तर नहीं दिखाई दिया। अध्ययन में समाविष्ट अधिकांश विद्यार्थी मानसिकता के मध्यम स्तर में समाविष्ट थे।

निष्कर्ष :

शोध से यह स्पष्ट होता है कि शारीरिक गतिविधियां विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य को सुधारने में अत्यंत प्रभावशाली भूमिका निभाती हैं। यह न केवल तनाव और अवसाद को कम करने में सहायक होती हैं, बल्कि यह विद्यार्थियों के आत्म–विश्वास, एकाग्रता और सकारात्मक दृष्टिकोण को भी बढ़ावा देती हैं।

नियमित खेलकूद, व्यायाम और योग जैसे उपाय विद्यार्थियों को मानसिक रूप से अधिक संतुलित, प्रसन्न और आत्मनिर्भर बनाते हैं। अतः शैक्षणिक संस्थानों को चाहिए कि वे शारीरिक शिक्षा को अनिवार्य बनाएं तथा मानसिक रूप से सशक्त विद्यार्थियों के निर्माण में सहायक हों।

संदर्भ सूची –

1. कंसल देवेन्द्र कुमार, शारीरिक शिक्षण में प्रायोगिक मापन मूल्यांकन तथा खेल चयन, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, सितम्बर 2011, दिल्ली
2. पाण्डे योगेन्द्र, क्रीड़ा मनोविज्ञान, नागपुर, अमृत प्रकाशन, 1999
3. शर्मा एन.पी., शारीरिक शिक्षा, नई दिल्ली, खेल साहित्य रोड, दरियागंज, 2006
4. शर्मा आर.के., खेल ट्रेनिंग के वैज्ञानिक सिद्धांत, नई दिल्ली, क्रीड़ा साहित्य प्रकाशन, 2000
5. सिंह अजमेर व साथी, ओलम्पिक अभियान, लुधियाना, कल्याणी पब्लिशर्स, 2004

शिक्षा और मानवता : दशा एवं दिशा

डॉ. राजेन्द्र कुमार जायसवाल*

उन्नीसवीं शताब्दी के चौथे दशक में मैकाले ने शिक्षा सम्बंधी एक रिपोर्ट तत्कालीन अंग्रेज सरकार को प्रस्तुत की। उस रिपोर्ट के अनुसार ब्रिटिश शासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए अंग्रेजों को उनके विभिन्न कार्यालयों के लिए 'लिपिको' की आवश्यकता थी। ऐसे लिपिक जो केवल सूचनाओं को अपने मस्तिष्क में इकट्ठी रख सके। ऐसे लिपिक जिनका तन भारतीय लेकिन मन अंग्रेजियत से भरा हो। जो उनके इशारे से चल सके। जिन्हें पूँछ हिलाने की आदत पड़ जाय, जो श्रम से विमुख हो जाए, जो आत्मा से पूर्णतः अंजान बन जाएं, ऐसे लिपिकों के निर्माण के लिए मैकाले ने स्कूली फैक्ट्रियों की नींव रक्खी। लगभग उसी तरह की फैक्ट्रियों में भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद भारी इजाफा हुआ और आज इतने बच्चों को तैयार किया जा रहा है। श्रम से विमुख, आत्मा से रहित चलते–फिरते पुस्तकालय के रूप में मैकाली शिक्षा को देकर वर्तमान में हमारी राजनीतिक कमजोरी के कारण आज तक शिक्षा में कोई क्रान्ति नहीं हो सकी।

महात्मा गाँधी के अनुसार, शिक्षा का उद्देश्य बालक और मनुष्य के शरीर, मन व आत्मा में जो कुछ श्रेष्ठ है, उसका पूरी तरह से प्रस्फुटन होना है। आत्मा के संस्कार के बिना सब शिक्षा बेकार ही नहीं घातक ही होगी।

स्वावलम्बन ही शिक्षा की सही कसौटी है। रवीन्द्र नाथ टैगोर के अनुसार, शिक्षा का उद्देश्य आत्मा को स्वतंत्र और अन्तिम दिशा में अग्रसर करना है। बालक उन कौशलों से सुसज्जित हो सके जिससे जीवन आनन्दमय बनाया जा सके। वह एक उपयोगी नागरिक बन सके और अपनी मौलिक क्षमताओं को सृजनात्मक अभिव्यक्ति को कलात्मक रूप दे सके। स्वामी विवेकानन्द ने युवाओं से राष्ट्र निर्माण की बात करते हुए शिक्षा का मूल्य उद्देश्य सुप्त शक्तियों का अनावरण एवं उनका विकास करना बताया। विवेकानन्द ने बालक को बरगद के वृक्ष के बीज की तरह बताया है जिसके अति सूक्ष्म बीज में बरगद जैसे विशाल, बरसों तक चलने वाले पेड़ के रूप में समस्त संभावनायें अन्तर्निहित है। योगिराज अरविन्द ने बालक को शिक्षा के द्वारा उसी प्रकृति में जो कुछ सर्वोत्तम, सर्वाधिक शक्तिशाली, सर्वाधिक अन्तरंग और जीवन पूर्ण है उसको अभिव्यक्ति करना है, के तथ्य को स्वीकारा।

इसी क्रम में स्वामी दयानन्द सरस्वती, डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन, महान विचारक जे० कृष्णमूर्ति, पंडित नेहरू, विनोबा भावे, गिजुभाई तथा महान चिन्तक ओसो ने भी शिक्षा के बारे में अपना चिन्तन प्रस्तुत किया। इन्हीं विचारों से साभ्यता लिए हुए पश्चिम के शिक्षा विचारक इवान इलिच, पॉलो फैरे, इलविन टाफलर, जॉन लॉक, जॉनहाल्ट, मदाय मारिया मांटेसरी ने मैकाले शिक्षा को एकदम नकार दिया। उक्त महान चिन्तकों युग पुरुषो ने शिक्षा के बारे में जो कुछ कहा और किया उसे हम आजादी के 69 वर्षों के बाद भी करने में पूर्णतः असफल रहे हैं। गिजुभाई ने तो बच्चों की शिक्षा के लिए उनके अभिभावकों के शिक्षण, प्रशिक्षण के भी व्यावहारिक प्रयोग कर दिखाएं जिसकी कल्पना करना भी हमें अचंभित कर देता है। स्वतंत्र भारत में कई तरह की बीमारियाँ घुस आई। कुछ बीमारियों को स्वयं भारत ने पैदा किया। इनमें गरीबी, जनसंख्या में बेतहाशा वृद्धि, स्वास्थ्य में गड़बड़, नैतिक पतन और पर्यावरण प्रदूषण जैसी लाइलाज बीमारियों ने देश को जकड़ रखा है। इसी क्रम में 1998 में नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने वाले भारतीय अर्थशास्त्री ने शिक्षा और अर्थ का गहरा सम्बंध 1 बताया। अमर्त्य सेन ने अर्थशास्त्र की मूल चिन्ता शिक्षा को ही बताया। इनके अनुसार जो देश आजादी के बाद शिक्षा के सही उद्देश्य के अनुसार, प्रारम्भिक शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं कर सका। स्वास्थ्य की चिन्ता को जन–चेतना से जोड़कर जनस्वास्थ्य के प्रति जिम्मेदारी नहीं निभा सका, अपनी किशोर और युवा पीढ़ी के लिए शिक्षा के जरिए श्रम और उत्पादन के प्रति आस्था न जगा सका, वह देश निश्चित रूप से गरीब ही होगा, इसमें कोई शक नहीं है। 14 अगस्त, 1947 को जवाहर लाल नेहरू ने देश के नाम अपने प्रथम उद्‌बोधन में कहा था– हमें देश की किस्मत बनानी है और अपनी कसम निभानी है। हमें अवसरों के जरिए विकास और उपलब्धियों की विजय यात्रा शुरू करनी है, यह तभी संभव है जबकि

*एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, श्री गणेश राय पी0जी0 कालेज, डोभी, जौनपुर
E.mail –jaiswalrajendra27@gmail.com

हम अज्ञान व अशिक्षा के अंधेरे का नाश कर दें। शिक्षा की विराट उपेक्षा ने इस देश को एक विराट वंचित, शोषित और अभावग्रस्त समाज बना दिया है।

शिक्षा के लिए इतनी सारी बाते इतनी सारी समझ होने के बावजूद हम शिक्षा को केवल सूचनाओं के जमाकर्ता के रूप में ही ले रहे हैं। जिसे 'फेरे' ने शिक्षा की बैंकीय अवधारणा के रूप में बताया है। वही छात्र अच्छा है, जो अपनी खोपड़ी में कुछ सूचनाएं चुपचाप भरने दें। जरा भी आह न करें। वही शिक्षक अच्छा है, जो छेनी व हथौड़ा लेकर बच्चे की खोपड़ी के ढक्कन को बेदर्दी से खोले और धमाधम अपना कचरा, नाकारा नीरस अव्यावहारिक सूचनाएं भर दे। वहीं छात्र अच्छा है, जो वर्षभर सूचनाओं को अपने मस्तिष्क में संचित करते हुए तीन घंटे की परीक्षा में कॉपी में उगल दे, जिसके सवाल गैस पेपर्स सीरीज में उपलब्ध थे। अच्छा शिक्षक वहीं है, जो परीक्षा के साथ बच्चे के मुँह में उंगली डालकर उसे उल्टी करने के तरीके बता सके। अच्छा परीक्षक वह है, जो तीन घंटे में लिखे गए कॉपी के उत्तरों को अपने बच्चों की मदद से तीन मिनट में जाँच दे। वर्ष भर की शिक्षा का तीन मिनट में मूल्यांकन। सब शिक्षा विचारकों, चिन्तकों, मनीषियों की शिक्षा का उत्तर सिर्फ तीन मिनट ! हमारे भारतीय दर्शन में कहा गया है 'सा विद्या या विमुक्तये' विद्या (शिक्षा) वही है, जिससे भौतिक, दैहिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, आर्थिक समस्याओं से मुक्ति प्राप्त हो। वास्तव में परीक्षा देकर बच्चे के पिता इन सभी समस्याओं से मुक्त हो जाते हैं। हमने पढ़ाया बच्चे को और शिक्षा मिली उसके पिता को। वाह रे शिक्षा। संसार भर में इससे बड़ा व्यंग्य और कहीं नहीं हो सकता।

प्राचीन समय में व्यक्ति को तीन ऋणों में उन्मुक्त करने के लिए शिक्षा को सहायक समझा जाता था। शिक्षा को पितृ ऋण, ऋषि ऋण और देव ऋण से उऋण प्राप्ति का साधन समझा जाता है। शिक्षा पूरी होने पर गुरु शिष्य के 'सत्यं वद! धर्मम् चर। स्वाध्यायान या प्रमदः' का उपदेश देकर उसे विदा करता था। आज की शिक्षा पूर्ण होने पर बच्चे के पेट में श्रम से विहीन शून्य भावबोध बाला हृदय और सूखे पन्नों की खसखसाहट के साथ 'असत्यं वद। अधर्मम् चर अस्वाध्यायान मा प्रमदः' के भाव हृदय में डालकर विदा कर दिया जाता है। सभी शिक्षा के दौरान केवल किताबों के शब्द बालक को सत्य की शिक्षा का उपदेश देते हैं। शिक्षक राज और समाज असत्य ही खातें, असत्य ही पहनते और असत्य ही बिछाते रहे तो बालक ने असत्य सीख लिया। इसी तरह कक्षा के बरामदे में धर्म के रास्ते पर चलने वाले 'अमृत कण' ही उपदेश देते रहे। शिक्षक, राज और समाज अधर्म को ही चाटता रहा। बच्चे ने सधर्म पर चलना सीख लिया। स्वाध्याय की बात भी कब की मर गई, क्योंकि स्वाध्याय का अर्थ केवल पढ़ना, लिखना नहीं होता है। इसका अर्थ गहराई से ज्ञान प्राप्त करने से होता है। वैदिक काल में जिस शिक्षा की प्रकाश, गुप्तधन, तीसनरा नेत्र आदि नामों से अलंकृत किया जाता था। जिसके आत्मविश्वास, धैर्य, विश्वास, आत्मसंयम, कर्तव्यनिष्ठा की शिक्षा मिलती थी। वही आज की शिक्षा चापलूस, अविश्वासी, अधीर, तनावग्रस्त व दुखी मनुष्य को जन्म दे रही है।

महावीर, बुद्ध, राम, कृष्ण की इस धरती पर हम अब अशिक्षा के बारूद पर बैठे हैं। अगर खालिस सूचनाओं को तूंसना ही शिक्षा है तो शिक्षा के नाम पर समस्त विचारों के द्वारा दिए गए विचारों पर तत्काल कालिक लगा देनी चाहिए। शिक्षा का अर्थ कुछ सूचनाओं को मस्तिष्क में भरना ही है और हमें इस बात को स्वीकार कर लेना चाहिए कि शिक्षा का मतलब केवल आलसी लोगों की फौज खड़ी करना ही है। शिक्षा का श्रम से व आत्मा से कोई अर्थ नहीं है। शिक्षा केवल अपनी बुद्धि से ही सम्बंध रखती है।

महाभारत में एक प्रसंग है। विदुर जी द्रौपदी के चीरहरण से पहले दुर्योधन के पास जाते हैं, वे कहते हैं दुर्योधन हमने पाण्डवों को छल से हराया है। उनका धन व राज्य भी ले लिया है। अब तुम द्रौपदी के कपड़े उतारने पर तुले हो। वह तो तुम्हारी भाभी है। ऐसा करना अन्याय है। तब दुर्योधन ने कहा हे तात! आपने सत्य कहा। चीरहरण करना अधर्म है, पाप है। भाइयों को लाक्षागृह में जलाना भी घोर अनीति है। परन्तु काका यह सब मैं जानता हूँ 'जानामि धर्मम् न च में प्रवृत्ति जानाभ्यधर्मम् न च में निवृत्ति। धर्म क्या है? मैं यह जानता हूँ। अधर्म क्या है? मैं यह भी जानता हूँ लेकिन उससे मैं मुक्त नहीं हो सकता। प्रमुख शैक्षिक चिन्तक मनुभाई पंचोली कहते हैं कि हम सब आंशिक रूप से ही सही दुर्योधन हैं। शिक्षा क्या है? स्कूल किसे कहते हैं ? शिक्षक कैसे हो ? बच्चों से व्यवहार कैसे करें ? क्या हम जानते नहीं। हम जरूर जानते हैं परन्तु नच में निवृत्ति। इस वृत्ति से हम मुक्त नहीं हो सकते। परन्तु मुझे ऐसा लगता है कि हम दुर्योधन से भी बढ़कर हैं क्योंकि काका के सामने उन्होंने सत्य को स्वीकार तो कर लिया। हम सत्य को स्वीकार ही नहीं कर रहे। शिक्षा के नाम पर केवल अशिक्षा व अज्ञान बेचने का धंधा चला रहे हैं। हमारा नैतिक पतन और कितने गहरे गड्ढे में जायेगा। क्योंकि इस मामले में हमने दुर्योधन को भी पीछे छोड़ दिया है।

फ्रेरे ने कहा 'सच्चा सम्प्रेषण ही सच्ची शिक्षा है।' सम्प्रेषण के लिए संवाद जरूरी है। संवाद ऐसा जिसमें आशा, धैर्य, विश्वास, इच्छा, उत्साह, ईमानदारी, विवेक, संयम और आत्मविश्वास की पूर्णता हो। केवल शब्दों को चिन्तन का स्वरूप देना ठीक नहीं है। शब्दाडंबर है। केवल शब्दों को कर्म का रूप देना सक्रियतावाद को जन्म देना है। अतः शब्द के अनुरूप चिन्तन जरूरी है व उसी के अनुसार कर्म बनेगा व इसकी व्यापकता ही संवाद बनती है। संवाद का विस्तृत कैनवास संप्रेक्षण का रूप बनता है। यही सच्ची शिक्षा होगी जो विश्व के रूपान्तरण में सक्षम होगी। हमारे वेदों में भी 'मनसा वाचा कर्मणा' लिखा है जो फेरे की बात को वजन देता है।

इसके अनुसार जो मन में हो वह वचन बने। जो वचन हो वहीं कर्म बन जाए। यहीं मनुष्य बनने की आवश्यक सूत्रबद्धता है। परन्तु हमारी शिक्षा केवल 'चिन्तन' रोग से पीड़ित है। समूची शिक्षा में 'वर्णन रोग' लग गया है। राज, समाज और शिक्षक सभी मोटी–मोटी परिभाषाओं के वर्णन में लगे रहते हैं। ओजोन परत में छंद होने पर पूरी दुनिया में हल्ला मच गया था। क्लिंटन की यात्रा को देश ने सिर पर उठा लिया था। शिक्षा में न क्रान्ति हुई न अब भविष्य में कोई आशा बनती नजर आ रही है।

पाश्चात्य जीवन दर्शन पर आधारित हमारी वर्तमान मैकाली शिक्षा उसी पाश्चात्य दर्शन का पूरा बिम्ब बन गई है। अमेरिका में इस शिक्षा के पढ़े–लिखे लोग ज्यादा पागल, तनावग्रस्त व दुःखी है। पाश्चात्य दर्शन के अनुसार मनुष्य को प्राकृतिक साधनों व सम्पदाओं को भोग करने की सीख दी है, जिससे पर्यावरण का संकट गहरा हुआ है। स्ट्रगल फॉर एक्जिस्टेंस के अनुसार अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करना जरूरी है। अतः लडते भिड़ते रहो, जो व्यक्ति अन्य प्राणियों की तुलना में सर्वाधिक सक्षम व समर्थ रहेगा। उसी का वंश बचेगा व अन्य सभी खत्म हो जायेगा। अतः परीक्षा में येन–केन प्रकारेण प्रथम आना जरूरी है, क्योंकि सर्वाइवर ऑफ द फिटेस्ट महात्वाकांक्षा की अंधी दौड़ में एक–दूसरे का गला काटना निहायत ही जरूरी है। ऐसी पाश्चात्य शैली जो क्रूर हिंसा का मार्ग प्रशस्त करती है। ऐसी मैकाली शिक्षा जो असंतोष को जन्म देकर दुःखी मनुष्य का निर्माण करती है। दुर्भाग्य से वही शिक्षा हमारे समाज में अपनी निरन्तरता बनाने में कामयाब हो गई है। भ्रष्टाचारी इसी शिक्षा का एक गहना बन गया है। चालाकी इसके वस्त्र बन गए हैं। ऐसी शिक्षा से हम आकंठ तक डूब चुके हैं।

अगर यही सब कुछ शिक्षा है तो ईश्वर के नाम पर इसे बन्द कर दिया जाए तो मनुष्यता का एक अच्छा काम होगा। अब तो बच्चे इसी तरह की शिक्षा को नियति मानकर स्वयं यह जरूर लेने लगे हैं। वे खुद अपने आप को कुर्सियों से बाँधकर अपना जबड़ा खोलते हैं। वे खुद शिक्षक को मद्द करते हैं कि वे उनके दिमाग में सूचनाएँ दूँस दे। अभिभावक इस काम में बच्चे को मद्द देते हैं। उसके हाथ–पैर पकड़ते हैं। एक तरह से – हम भावी पीढ़ी को पालने के बाद ही आत्महत्या की ओर बढ़ाने में विवश व मजबूर कर रहे हैं। ना जाने कब महात्मा गाँधी, टैगोर, विवेकानन्द, श्री अरविन्द, दयानन्द, विनोबा, कृष्णमूर्ति, गिजुभाई के शिक्षा दर्शन को मूर्तप मिलेगा और अब अमर्त्य सेन की अर्थशास्त्र की मजबूती के लिए सच्ची शिक्षा की वकालत कब क्रान्ति बनेगी। अब जरूरत है शिक्षा में क्रान्ति की। श्री रजनीश के अनुसार शिक्षा का जगत सदा से क्रान्ति का विरोधी रहा है। शिक्षा सदा से प्रतिगामी रही है। यही कारण है कि शिक्षकों ने आज तक क्रान्तिकारी विचारक पैदा नहीं किए। शिक्षकों के ऊपर आज तक अविष्कार का कोई इल्जाम नहीं लग पाया है। शिक्षा का व्यवसाय समादृत हो रहा है, लेकिन प्रथम कोटि की प्रतिभा शिक्षक की तरह आकृष्ट नहीं हुई। शिक्षा ने बुद्धिमत्ता पैदा नहीं की। शिक्षा ने केवल स्मृति पैदा की जो पुनरुक्ता कर सकती है। हमारी सारी परीक्षाएं सिर्फ स्मृति की है। ज्ञान, बुद्धि, विवेक, नैतिकता, आचरण की कोई परीक्षा है न कि शिक्षा।

अतः समय रहते हुए शिक्षा में और विशेष तौर से हमारी विशेष तौर से हमारी प्रारम्भिक शिक्षा में कान्ति की जरूरत है। शिक्षकों में शिक्षा के विभिन्न आयामों पर शैक्षिक विमर्श की आवश्यकता है। देश की उच्च कोटि की प्रतिभा को शिक्षा की ओर मोड़ने की जरूरत है। रहीम ने कहा है –

एकै साधे सब सधे, सब साधे सब जाए।
रहिमन मूल ही सींचबौ, फूलहि फलहि अधाय ।।

जड़ को सीचने से ही पत्ते और शाखाएं सभी फल लग जायेगे। शिक्षा के सही उद्देश्य की दिशा में कारगर उपायों को क्रियान्विती देने से गरीबी, भ्रष्टाचार, अनैतिकता व असंतोष जैसे क्रूर राक्षसों के खिलाफ लड़ाई अपने आप छिड़ जायेगी। वास्तविक शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करके ही हम जीवन में आनन्द और सुख की प्राप्ति कर सकते हैं। शिक्षा में क्रान्ति की जरूरत है। शिक्षा के वास्तविक उद्देश्यों की पूर्ति करने की आवश्यकता है। वर्तमान शिक्षा बारूद का ढेर है। इसकी प्रगति हमारी पूरी मानव सभ्यता को एक दिन जरूर

नष्ट कर देगी। प्यार, शक्ति, मानवता के इस देश को सच्ची शिक्षा को तलाशने की जरूरत नहीं है। असल में हमारे युग पुरुषों ने यह काम पहले ही कर दिया है। ऐसी सच्ची शिक्षा को व्यावहारिकता का कर्म का अमली जामा पहनाना जरूरी है। इसके लिए दृढ़ राजनीतिक व सामाजिक इच्छा शक्ति की प्रबल आवश्यकता है।

सन्दर्भ सूची

1. तुलनात्मक शिक्षा, डॉ० सरयू प्रसाद चौक, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
2. भारत में शिक्षा का विकास, डॉ० जी०एस० वर्मा, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाऊस, मेरठ।
3. शैक्षिक निबन्ध, डॉ० रामशक्ल पाण्डेय, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
4. शिक्षा के समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, प्रो० रमन बिहारी लाल रस्तोगी, पब्लिकेशन, मेरठ।
5. भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका अर्द्धवार्षिक शेष पत्रिका।
6. हिन्दुस्तान, दैनिक जागरण, दैनिक समाचार पत्र।
7. 'शिक्षा चिन्तन' त्रिमूर्ति संस्थान, कानपुर।

हिन्दी साहित्य मे किन्नर समाज : एक विमर्श

डॉ. कल्पित चौधरी*

सम्पूर्ण भूखण्ड में जीवन निर्वाह कर रहे चराचर जीवों का अपना एक विशिष्ट महत्व तथा स्थान है किसी एक अंग में असंतुलन सम्पूर्ण सृष्टि को प्रभावित करता है, प्रत्येक जीव जगत के मध्य एक विशिष्ट सम्बन्ध होता है। प्राणी मात्र की यह सामान्य धारणा होती है कि वह उन्ही तत्वी या वस्तुओं को अंगीकृत करता है, जो उनके लिए लाभप्रद है। इस क्रम में सकते महत्वपूर्ण तथ्य यह उभरकर आता है कि वह अपने अस्तित्व एवं आत्म सम्मान का निर्माण करे, जिसे किन्नर समाज आजतक बनाने में पूर्णतःसफल नही रहा। जब हम मानव समाज की बात करते है तो हमारे जहन में स्त्री और पुरूष की ही संकल्पना आती है। प्रथमतः तो किन्नर समाज का मान भी नहीं आता। सृष्टि के आरम्भिक चरण से ही किन्नर समाज को जीवन यापन के सन्दर्भ में सर्वदा संघर्ष करना पड़ा है। यहॉ तक कि थर्ड जेण्डर जिसे प्रायः हिजड़ा भी कहा जाता है को जब किन्नर नाम से सम्बोधित किया जाने लगा तब किन्नौर जाति में गम्भीर आपत्ति उठायी थी। वर्तमान समय में किन्नर समाज को विधिक–अविधिक के द्वारा इनके मुख्य धारा से जोड़ा गया है परन्तु आज भी ये उस पहचान से अछूते है जिसके हकदार ये लोग हैं।

किन्नरो की मनोव्यथा को सामान्य जनमानस के समक्ष लाने में साहित्य की महती भूमिका रही है। किन्नर समाज को मुख्य धारा में जोड़ने के लिए इतना लम्बा समय लगना ही अपने आप में एक गम्भीर एवं विचारणीय प्र"न है। सन् 2002 में प्रका"ित उपन्यास 'यमनदीप' तथा लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी की आत्मकथा मै हिजड़ा.....मै लक्ष्मी का प्रका"ान किन्नर समाज को"ाग्रन्थो के उत्कर्ष के लिए वरदान सिद्ध हुए, विभिन्न टीकाकारो, व्याख्याकारो द्वारा किन्नर तथा किन्नर शब्द को परिभाषित तथा व्याख्यायित किया गया है। वृहद हिन्दी शब्द को"ा में किन्नर शब्द को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि 'देवताओं' की एक योनि जिनका मुह घोड़े के जैसा होना माना जाता है, किं–''पुरुष गाने बजाने वाली एक जाति है। देव योनि की जाति के रूप में पुराख्यानों में किन्नरो की कीर्ति गाथा संरक्षित है। संगीत साधना इनके जीवन का अंग रहा है। इसका स्त्रीलिंग किन्नरी एक तरह के तम्बूरे से समीकृत है।.....किन्नरी द्वारा प्रयुक्त किंगरी से संबोधित हुआ जिसका शाब्दिक अर्थ चिकारा है। किंगरी शरीर का भी वाचक है।''(1)

कामसूत्र के प्रणेता वात्सायन किन्नर शब्द को स्पष्ट करते हुए लिखते है कि–''किम अहं नरः इति किन्नरः अर्थात ऐसा पुरुष जिसे अपने पुरुष होने पर संदेह हो। इसी आधार पर कहा जा सकता है कि किं–पुरुष शब्द भी इसी आधार पर प्रचलित हुआ है। साथ ही प्रजनन अंगो के साथ ही भावो या विचारो से पुरुषत्व के अस्वीकार से किन्नरता का प्रादुर्भाव हुआ। मानक समुदाय की यह तृतीय प्रवृत्ति स्त्री और पुरुष स्वरूप में दिग्दर्"ात है।''(2)

किन्नर शब्द हिन्दी के दो शब्दो 'कि' और 'नर' से मिलकर बना है, अर्थात इनके यौनांग की आकृति आम मानव की तरह नहीं होती है। यह न स्त्री होते है और न ही पुरुष होते है दो लिंगी की श्रेणी में न होने के कारण न ये प्राकृतिक रूप से संबंध बना सकते है और न ही गर्भधारण कर सकते है। इसी प्रकार से 'कैम्पबेल योम्पसन' ने हिजड़े की परिभाषा उस व्यक्ति के रूप में की है जो प्रजनन करने में अक्षम हो।''(3)

प"ाचात्य विद्वान 'एडगर थ्रस्टन' ने किन्नर समुदाय को दो विभागों में विभाजित करते हुए लिखते है कि–''प्रथम प्राकृतिक रूप से जन्मे जिन्हे हिजड़ा कहा जाता है तथा जिसे बधिया किये हुए पुरुष जिसे खोजा कहा जाता है।''(4)

भारतीय संविधान में इस समुदाय के लिए किन्नर, हिजड़ा, इण्टरसेक्स, टॉससेक्ससुअल प्रभित शब्दों का प्रयोग किया गया है। इसके साथ ही भारत के क्षेत्र वि"ोष में इस समुदाय के लिए अलग–अलग शब्दो का प्रचलन है जैसे मराठी में हिजड़ा एवं छक्का, गुजराती में पावैया, छत्तीसगढ़ी में हल्बा उड़िया में हिजड़ा, नपुंसका, पंजाबी में खुसरा, तमिल में नंदायी आदि।

समाज में किन्नर समुदाय एक ओर जीवन यापन एवं समाज की मुख्य धारा में सम्मिलित होने के लिये संघर्ष कर रहा है तो दूसरी ओर बेरोजगारी का दं"ा झेल रहे नकली किन्नरों से संघर्ष करना पड़ रहा

* ि"ाक्षक आवास उपाधि महाविद्यालय पीलीभीत, मो0– 9452845558

है। यह समस्या बहुत ही ज्वलंत तथा समाज में विकराल रूप धारण कर रही है। ऐसे समुदाय के अमर्यादित वर्ताव के संदर्भ में वास्तविक किन्नर समुदाय प्रताड़ित किया जाता है। साहित्य जगत में चर्चित उपन्यास 'गुलाब मंडी' मे निरुपित किये गये लल्लन समूह एवं गुरू समूह के मध्य संघर्ष इसी बात को लेकर था। इसके साथ ही 'किन्नर कथा' नामक उपन्यास में भी इस कुप्रथा को उकेरा गया है ''असली किन्नर जिनकी तादाद बहुत कम है कभी दो चार रुपये के लिए मेले में भीख मागते नहीं घूमते है। पैसा न मिलने पर किसी को कोसते नहीं है और न ही लड़ाई–झगड़ा करते है। जिसने प्रेम से दे दिया, ले लिया। यह नही कि गुस्सें में घाघरा उठा कर रख दिया, ये काम नकली किन्नर करते है। असली किन्नर मन व आत्मा से स्त्री होते है। उनका शरीर पुरुष की तरह हो सकता .....स्त्री की तरह उनकी चाहत पुरुष से संसर्ग की होती है, जबकि नकली किन्नर पुरुष होते है और सेक्स के लिए स्त्री की चाहत रखते है।''(5)

अन्यत्र इसी उपन्यास में इसी समस्या का रेखांकन करते हुए लेखक ने लम्बू नामक पात्र के माध्यम से इस तथ्य को सहदय समाज के समक्ष प्रस्तुत किया है इसमे यह दिखाया गया है कि किस प्रकार से नकली किन्नर वास्तविक हिजड़ों के अधिकार का भक्षण करते हैं। कुछ इसी प्रकार की चर्चा 'तीसरी ताली', 'ए जिंदगी तुझे सलाम' नामक उपन्यासों में भी निरूपण किया गया है एक उपन्यास में तो यहाँ तक उद्दघृत है कि सर्वोच्य सत्ता प्राप्त करने के लिए अपना पुरुषांग तक कटवा लेते है।

किन्नर समाज के समक्ष सबसे दुखद समस्या यह है कि जीवन के आरम्भिक चरण से ही विस्थापन एवं समुचित आवास की व्यवस्था से जूझना पड़ता है। बच्चे के जन्म लेने या परिवार तथा समाज को पता लगने के साथ ही इन्हें कुदृष्टि से देखा जाने लगता है। जिसके परिणाम स्वरूप इन्हें विव"ा होकर इन्हे परिवार तथा समाज को छोड़ना पड़ता है। प्रायः देखा जाता है कि कोई भी व्यक्ति वि"ोष समाज में कितना भी घिनौना कृत्य करके आता है फिर भी परिवार उसके साथ खड़ा रहता है परन्तु यह दुर्भाग्य की बात है कि प्रायः किन्नर समाज के साथ परिवार को भी सहानुभूति नही रहती है। इस समस्या का रेखांकन करते हुए 'महेन्द्र भीष्म' ने अपने उपन्यास 'किन्नर कथा में लिखते है कि ''प्रत्येक हिजड़ा अभि"ाप्त है, अपने ही परिवार से बिछड़ने के दं"ा से समाज का पहला घात यहीं से उस पर शुरू होता है। अपने ही परिवार से, अपने ही लोगों द्वारा उसे अपनो से दूर कर दिया जाता है। परिवार से विस्थापन का दं"ा सर्वप्रथम उन्हें ही भुगतना होता है।''(6)

किन्नर समुदाय अपने लैंगिग अपूर्णता के कारण दर–दर की ठोकरें या हम यह कहें कि बद से बदतर जीवन यापन को मजबूर होते है वो न चाहते हुए भी ऐसे जीवन यापन के लिए विव"ा किये जाते है। सामर्थ्यवान होने पर भी सामान्य समाज रहने को मना कर देता है। इस प्रकार की दुर्ब्यवस्भाए किन्नर समाज के मनोभाव को आघात पहुँचाता है। 'किन्नर कथा' नामक उपन्यास में सोना के प्रति तारा गुरू के वक्तव्य से समझा जा सकता है ''ई"वर क्यों करता है ऐसा अन्याय? भला! इस नन्ही हंसती–खेलती बच्ची का क्या दोष है जो इसे ई"वर ने अपूर्ण बनाकर संसार में भेजा, जिसे अपने माता–पिता से दूर होना पड़ रहा है जिसे घर से बेघर किया जा रहा है। परिवार से विछड़ने का दं"ा कितना सालता है कष्ट देता है, यह उससे अच्छा भला कौन जान सकता है।''(7)

वास्तव में किन्नर समाज जैसे ही परिवार एवं समाज से विस्थापित होता है वैसे ही आवास संबन्धी समस्या विकराल रूप में उसके समक्ष प्रस्तुत होती है अतः हम कह सकते है कि ये दोनों समस्याएँ एक दूसरे पर आश्रित होती है। हिन्दी साहित्य में अनेक उपन्यासों में जैसे 'अस्तिव की तला"ा में सिमरन,' गुलाम मंड़ी, किन्नर कथा, यमदीप, दरमियाना, तीसरी ताली में इस प्रकार की समस्याओं का रेखांकन किया गया है। प्रायः लोक व्यवहार में भी हम पाते है कि किन्नर समाज के आवास दूर से ही पहचान में आ जाते हैं। इस समस्या के फलस्वरूप किन्नर समुदाय को सामाजिक असुरक्षा तथा यौन शोषण का सामना करना पड़ता है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, तथा इस कारण से प्रत्येक मनुष्य को वि"िाष्ट सामाजिक तथा कानूनी अधिकार प्राप्त होते है। जिसके फलस्वरूप मनुष्य समाज में जीवन यापन करते हुए स्वयं को सुरक्षित महसूस करता है। भारतीय दण्ड संहिता न्याय संहिता में अनेक उपबन्धो के माध्यम से शारीरिक एवं मानसिक शोषण से समाज को प्रतिरक्षित करता है, यहाँ तक कि न्याय संहिता बच्चों के प्रति होने वाले शोषण को भी रोकता है। न्याय संहिता में इतने कठोर दण्ड का प्रावधान होने पर भी यौन शोषण, बलात्कार, प्रभित अपराधों में निरन्तर वृद्धि हो रही है, जो नितान्त चिंता का विषय है यह स्थिति समाज के मुख्य धारा में रहने वाले सामान्य जन मानस की है। तो आप यह कल्पना भी नहीं कर सकते कि उस समुदाय की क्या वस्तुस्थिति होगी जिसके संरक्षण के सन्दर्भ में न्याय संहिता/दण्ड संहिता में कोई उपबन्ध या संरक्षण न हो तथा जो

नित्य प्रति अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत है। जब समाज तथा सरकार एवं न्याय व्यवस्था में किन्नर समुदाय को तीसरे लिंग के रूप में मान्यता दी है तो उनके संरक्षण के लिए उपबन्ध बनाने ही चाहिए पर ऐसा है नहीं, किन्नर समाज के इस मनः स्थिति को 'मै क्यों नहीं' इस मराठी उपन्यास में बड़े ही तार्किक ढंग से समाज के समक्ष रखा गया है– ''सर एक हिजड़े का पाँच लोग सामूहिक बलात्कार करते हैं। कैसा पुरुषार्थ है ना! सर, ऐसे बलात्कार के विरुद्व ि"ाकायत दर्ज कराने जाए तो हिजड़ा कहकर हमारा उपहास उड़ाया जाता है। मी लार्ड न्याय माँगे तो कहाँ मागें? हमारा इस दुनिया मे त्राता है? कोई त्राता है या नहीं यही समझ में नहीं आता।''(8)

भारतीय न्याय व्यवस्था की इसी विव"ाता को 'तीसरी ताली' नामक उपन्यास में भी बड़े ही मार्मिक ढ़ंग से उकेरा गया है– ''"ागिर्दो ने उसकी पैंट उतार कर उसे उल्टा लेटा दिया। पहलवान ने सरसो के तेल की शी"ाी से उसके मलद्वार में तेल डाला और अपनी लूँगी उपर उठाकर उस पर चढ़ गया।..... सुधीर की चीख नहीं निकली। उसकी घिग्घी बंध गई।..चीख निकलती तो बैरक के सन्नाटे को तोड़ देती, क्योकि जिस तरह की पीड़ा उसे हुई थी उसमे एक भयानक चीख पैदा होने से कोई रोक नहीं सकता था। .....उसके मलद्वार की परीधि की चमड़ी फट गई थी। खून रिसने लगा था।''(9)

संक्षेपतः हम यह कह सकते है कि किन्नर समाज अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष तो कर रहा है साथ ही साथ समय–समय पर समाज तथा सरकार द्वारा किन्नर समाज को मुख्य धारा से जोड़ने के लिए अनेक प्रयास किये जाते रहे है। इस संदर्भ में 2019 में आयोजित किन्नर समुदाय के सामूहिक विवाह का उल्लेख अत्यन्त आव"यक है साथ ही 2025 में प्रयागराज में आयोजित महाकुम्भ मेले में किन्नर अखाड़ा को अखाड़ा समुदाय में किन्नर अखाड़ा के रूप में मान्यता देते हुए अखाड़े के पीठाधी"वर को महामण्डले"वर की उपाधि से विभूषित किया गया। इस सन्दर्भ में 'मै भी औरत हूँ', अस्तित्व, 'किन्नर कथा' प्रभित उपन्यासों का वि"ोष योगदान है। साहित्य जगत में किन्नरों का उल्लेख या अस्तित्व हमें अनन्त काल से दिखाई देता है। इनका उल्लेख रामायण महाभारत प्रभित ग्रथों में दृष्टव्य होता है। समाज में प्रत्येक कालखण्ड में किन्नर समुदाय को वो आदर सम्मान तथा सामाजिक जीवन नहीं मिल पाया जिसके वे हकदार होते है। ऐसा बिल्कुल नहीं होता है कि किन्नर समुदाय में प्रतिभा का अभाव होता है। उचित परिवे"ा नहीं मिलने के कारण उनकी मेघा शक्ति का ह्यस होता जाता है ऐसी विषम परिस्थितियों का सामना करते हुए भी किन्नर समाज के कुछ किन्नरों ने समाज में मि"ाल प्रस्तुत की है जिसमें प्रमुख रूप से अमृता सोनी, गौरी सावंत, लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी, रूबीना वरीहा इत्यादि प्रमुख है।

किसी भी व्यक्ति के लिए जितना आव"यक सामाजिक अधिकार होते है उतने ही आव"यक राजनीतिक अधिकार होते है भारत जैसे दे"ा में जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को वयस्क होने पर मताधिकार प्राप्त है वहीं किन्नर समुदाय को इसके लिए काफी संघर्ष करना पड़ा तथा यह अधिकार उन्हें 47 वर्षो बाद सन् 1994 में प्राप्त हुआ। मताधिकार प्राप्त होने के कुछ वर्षो के प"चात ही सन् 2002 में शबनम मौसी विधायक बनी। उन्होंने एक साक्षात्कार में कहा कि –''ऐसे समाज को पहचान देकर जो सदियों से भेदभाव और तिरष्कार रहा है चुनाव आयोग ने प्र"ांसनीय कार्य किया है।''(10) इसके प"चात अनेक किन्नर जन प्रतिनिधि चुने गयें। साथ ही 2014 में सर्वोच्च न्यायलय ने किन्नर समुदाय को अन्य पिछड़ा वर्ग में शामिल करते हुए शैक्षणिक एवं सरकारी संस्थाओं में आरक्षण की व्यवस्था का आदे"ा निर्गत किया। तत्प"चात इनके सुधार हेतु अनवरत प्रयास होते रहे है।

साहित्य तथा लोक व्यवहार का अनु"ाीलन करने के प"चात निस्कर्षतः हम यह कह सकते है कि भले ही समाज, सरकार तथा न्याय पालिका में किन्नर समुदाय के उत्थान हेतु समय–समय पर वि"ाष्ट प्रावधानों की व्यवस्था की है जिसके परिणाम स्वरूप किन्नर समुदाय का जीवन कुछ सुखद अव"य हुआ है, परन्तु आज भी वे समाज में हाषियें पर ही खड़े दिखाई पड़ते हैं। तथा अपने पारंपरिक कार्य को करके जीवनयापन करने को विव"ा है। किन्नर सुखद जीवन की प्रत्या"ाा में ही अन्त को प्राप्त हो जाता है। वास्तव में इस समुदाय के उत्थान के लिए समाज एवं सरकार को और ध्यान देने की आव"यकता है।

संदर्भ सूची –

1. सं0 कालिका प्रसाद एवं अन्य बृहत हिन्दी को"ा पृष्ठ 246–247
2. डा0 विनय कुमार पाठक किन्नर विम"र्ः द"ाा और दि"ाा पृष्ठ –21
3. प्रो0 एस0 पी0 व्यास भारतीय इतिहास में थर्ड जेंडरः नाजिर (हिजड़ा) वर्ग पृष्ठ–13

4. एडगर थ्रस्टन कास्ट एण्ड ट्राइब्स इन सर्दन इण्टिया वाल्मूम 3मद्रास गवर्नमेण्ट प्रेस पृष्ठ.289–290
5. महेन्द्र भीष्म किन्नर कथा पृष्ठ–91
6. महेन्द्र भीष्म किन्नर कथा पृष्ठ–41
7. महेन्द्र भीष्म किन्नर कथा पृष्ठ–41
8. सुनीता पराजपे (अनुवाद) मै क्यो नही पारु मदन पृष्ठ–153
9. प्रदीप शौरभ तीसरी ताली पृष्ठ–143–144
10. शोभा ए चटर्जी विचार परिक्रमा, मानवाधिकार से भी वंचित पृष्ठ–41

इस्लाम से पूर्व अरब में काव्य एवं कविता

डॉ. नाहीद फ़य्याज़ क़िदवई*

सारॉंश

विश्व की समस्त जातियों में शायद अरब वह जाति है जिसे शायरी का शौक़ प्राकृतिक रूप से मिला है। यह जाति क़बायली जीवन गुज़ारती थी, जिसमें इसको हर तरह की आज़ादी प्राप्त थी। जाहिली काल में शेर व शायरी की सम्पत्ति जो हम तक पहुँची है, वह बहुत प्रभावशाली, दिलकश है। शायरी इन कलात्मक लतीफ़ों में से एक कला है, जिसे अरबों ने उच्च साहित्य का नाम दिया है। निःसन्देह अरबों की शायरी बहुत प्राचीन है, सामी वंशों में अरब सबसे अधिक काल्पनिक लोक में विचरने वाले जीव थे। शेर वो फ़सीह व बलीग़ कलाम है जिसमें वज़न के अलावा विशेष और अछूते विचारों व लतीफ़े उत्साह व एहसास की अक्क़ासी इस प्रकार की गयी है कि मनुष्य के ह्रदय एवं मस्तिष्क पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़े।

इन्सानी जज़्बात और मुशायरा में इस समय तक जागरूकता पैदा हो नहीं सकती जब तक कि शायर (कवि) अपने दिल की गहराईयों में डूबकर सुन्दर और चीदा वाक्य और वज़न क़ाफ़िया के ताने–बाने से अर्थ में समानता न पैदा करके श्रोता या क़ारी के दिल के तारों को झनझना न दे। शेर का सही और समुचित परिचय यह होगा कि काव्य वह विषयों और मुक़फ़ा कलाम है जो दिल की गहराईयों से निकले और इन्सान के जज़्बात और एहसासात को भड़का दे अर्थात् इसमें इतनी शक्ति और इतना प्रभाव हो कि इन्सानी जज़्बात और मुशायरे में एक हैजान सा बरपा हो जाय। अरबी भाषा में शेर का आरम्भ कैसे हुआ इस बात में सामान्य रूप से लेखकों में मतभेद है कि अरबी भाषा में काव्य का आरम्भ कैसे हुआ। यह बात सामूहिक रूप से कही गयी है कि सबसे पहली वस्तु जो काव्य से मिलती–जुलती थी वह मुसज्ज़ा शब्द थे। जिसे सामान्य रूप से काहिन और विद्वान लोग कहा करते थे। अरबी काव्य को तीन प्रकार से विभाजित किया गया है। हमने इस विभाजन को इसलिए अपनाया है कि उससे जाहिली काल को समझने और परखने में सहायता मिलेगी। अरबी काव्य का विभाजन इस प्रकार से है कि पहला रज़मिया, दूसरा तमसीलिया और तीसरा तरबिया है।

दुनिया की जातियों में शायद अरब वो जाति है जिसे शायरी का शौक मिला है। मानव समाज में संभवतः अरब समाज ही एक ऐसा समाज है जिसे काव्य के प्रति लगाव प्राकृतिक रूप से मिला है।[1] यह जाति बदवी जीवन गुज़ारती थी, जिसमें इसको हर प्रकार की स्वतंत्रता प्राप्त थी। इस जाति के व्यक्ति फ़ितरत के आग़ोश में आँखें खोलते हैं और उसी आग़ोश में परवान चढ़ते थे। दूर–दूर तक फैला हुआ रेगिस्तान, तेज व झुलसा देने वाला सूरज, तेज आँधियाँ, चमकता व दमकता चाँद, हँसते–मुस्कुराते सितारे, नशीली सुबह और परकैफ़ शामे उनकी सम्पत्ति थी और यह सम्पत्ति ऐसी है जिसका न उत्कर्ष न पतन। इस लिए अरब अपना वास्तविक जीवन व वास्तविक वातावरण में डूबकर और उनसे प्रभावित होकर अपने विचार व एहसास का इज़हार करता था।[2] भाषा इतनी मीठी और प्रभवशील मिली थी कि विचार की सादगी और इनका मूल्य, शब्दों की सुन्दरता, प्रभावशील और संगीत से जब मिलाप होता था तो जादू बन जाता था। यही कारण है कि वह जाहिली काल के शेर व शायरी की जो सम्पत्ति हम तक पहुँची है वह बहुत प्रभावशाली, दिलकश है। किन्तु इससे पूर्व कि हम इस काल की शायरी सम्पत्ति का अध्ययन करें यह मुनासिब मालूम होता है कि ये देखें कि अरबों के निकट शायरी का अर्थ क्या है।

काव्य का परिचय :–

शायरी इन कलात्मक लतीफ़ों में से एक कला है जिसे अरबों ने उच्च साहित्य का नाम दिया है और जिसमें शेर के अलावा नक़्क़ाशी, चित्रकारी और संगीत भी आती है। माहरीन उरूज़ में शेर का परिचय ऐसे दिया है कि शेर विषय व संगीत कलाम को कहते हैं। किन्तु यह परिचय ठीक नहीं है क्योंकि इस प्रकार

* असिस्टेन्ट प्रोफ़ेसर, अरब कल्चर विभाग, 536क/47 न्यू मक्कागंज, सामने शिया पी.जी. कॉलेज, सीतापुर रोड, लखनऊ–226020, मो0– 07985884303, ईमेल– naheedkidwai03@gmail.com

[1] अरबी साहित्य का इतिहास, डॉ0 अहमद नसीम सिद्दीकी, पृष्ठ 34

[2] अरबी अदब की तारीख़, पृष्ठ 120

प्रत्येक क़िस्म का कलाम जिसमें वज़न और क़ाफ़िया हो वह शेर हो जायेगा जबकि ऐसा नहीं है क्योंकि नक्क़ाद कहते हैं कि यदि भूगोल की समस्यायें या नहु के नियमों या ऐतिहासिक घटनाओं या आर्थिक समस्याओं को वज़न व क़फ़िया के क़ालिब में ढाल दिया जाय तो भी इसे शेर नहीं कहेंगे।[3]

वह मन्ज़ूम कला या विषय तो हो सकता है किन्तु इसे शेर का दर्जा नहीं दिया जा सकता है। इसलिए वह साहित्य का हिस्सा नहीं बन सकेगा इसका मतलब यह है कि किसी विचार या वास्तविकता को केवल नज़्म कर देना शेर होने के लिए काफी नहीं है। वरन् इसमें कुछ और विशेषताओं का होना भी आवश्यक है। वह विशेषताएं क्या हैं? वह हैं अछूते विचार व अफ़कार लतीफ़ जज़्बात व एहसासात की एक विशेष ताबीर है। इसलिए यह नक़्क़ाद शेर का यों परिचय देते हैं। शेर वह फ़सीह बलीग कलाम है जिसमें वज़न के अलावा विशेष और अछूते विचारों और लतीफ़े उत्साह व एहसास की अक्क़ासी इस प्रकार की गयी है कि मनुष्य के हृदय एवं मस्तिष्क पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़े।

निःसन्देह अरबों की शायरी बहुत प्राचीन है सामी वंशों में अरब सबसे अधिक काल्पनिक लोक में विचरने वाले जीव थे।[4] इन नक्क़ादों के निकट शेर के अजज़ाये तरकीबी में चूँकि अच्छे विचार और लताफ़त, जज़्बात व एहसासात और वज़न के साथ प्रभाव को प्राथमिकता प्राप्त है। इसलिए इसमें से कुछ ने प्रत्येक इस कलाम को जिसमें ये विशेषताएं उपस्थित हैं। शेर का नाम दे दिया चाहे वह गद्य ही क्यों न हो और अपने दावे के प्रमाण में हज़रत हस्सान की वह बात बयान करते हैं जिसमें उन्होंने अपने बेटे के गद्य में कहे वाक्यों को सुनकर कहा था कि रब काबा की क़सम यह तो शेर हैं।

इन्सानी जज़्बात और मुशायरे में इस समय तक जागरुकता पैदा नहीं हो सकती जब तक कि शायर (कवि) अपने दिल की गहराईयों में डूबकर सुन्दर और चीदा वाक्य और वज़न व काफ़िया के ताने–बाने से अर्थ में समानता न पैदा करके श्रोता या क़ारी के दिल के तारों को झनझना न दे। इसी कारण ज्ञान व कला को नज़्म कर दिया जाय तब भी इन्हें शेर का दर्जा नहीं दिया जाता। क्योंकि यह नज़्म वास्तव में ऐसी वास्तविकता का वर्णन होगा जिसमें विस्तार और प्रभाव का समावेश होगा जो जोश में तग़ीर पैदा करने के महरकात हैं। फिर वास्तविकता के ज्ञान से इन्सानी जज़्बात या मुशायरे में कोई जागरुकता नहीं पैदा होता क्योंकि यह वास्तविक प्रमाण और साक्ष्य से साबित किये जाते हैं और इनके लिए मनतिक़ व फ़लसफ़ा की आवश्यकता है और बुद्धि को क़ायल करके दावा को स्वीकार करती है।[5]

इसके विरुद्ध काव्य में दर्शन व मनतिक़ से इस्तदलाल नहीं किया जाता है कि इसका मुख़ातिब बुद्धि नहीं वरन् इन्सान जज़्बात या मुशायरा है। जिनका वास्तविक स्थान दिल है और दिल के अन्दरूनी हालात को प्रभावित करने के लिए दिल ही से निकलती हुयी वस्तु अर्थात् विचार और इसकी रफ़त और नुदरत की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए शेर का सही और समुचित परिचय यह होगा कि काव्य वह विषयों और मुक़फ़ा कलाम है जो दिल की गहराईयों से निकले और इन्सान के जज़्बात और एहसासात को भड़का दे अर्थात् इसमें इतनी शक्ति और प्रभाव हो कि इन्सानी जज़्बात और मुशायरा में एक हैजान सा बरपा हो जाय। इस हैजानी स्थिति पैदा करने में सुन्दर और दिलकश वाक्य वह रूप अदा करते हैं जो साज़ गाने के वाक्य में हैं इसलिए जब उच्च विचार और सुन्दर शब्दों का मिलान होता है तब वज़न के क़ालिब में ढल जाता है तो जादू असर पैदा कर देता है।

जब यह मरक़ा इन्सानी ज़िन्दगी के किसी ग़ोशा की अक़ासी करने लगते तो फिर यह सुबह बन जाता है जो मेअराज फ़न और हासिल शायरी है, शेर के मायने है दिल से किसी बात को महसूस करना और इस प्रकार मौजू किये हुये कलाम के सुधार में कलात्मक शेर कहते हैं।[6]

कलात्मक काव्य की तरकीब :–

कलात्मक काव्य की तीन तरकीबें निर्धारित की गयी हैं।

1. ऐसे माने और मतलब का पाया जाना जिन्हें विचारों ने जन्म दिया।

---

[3] अरबी अदब की तारीख़, पृष्ठ 122

[4] अरबी साहित्य का इतिहास,डॉ0 नरेन्द्र बहादुर श्रीवास्तव व प्रो0शाहअब्दुस्सलाम, पृ0 15

[5] अरबी अदब की तारीख़, पृष्ठ 123

[6] अरबी अदब की तारीख़, पृष्ठ 123

2. ऐसे सुन्दर और चुनिन्दा शब्दों का पाया जाना जिनसे शेर तख़्लील और संगीत में आपसी समवेश पैदा हो जाय।
3. इन शब्दों को एक विशेष सज–धज से इसी प्रकार तरतीब देना कि इनके माध्यम से प्रभाव और बढ़ जाय और यह विशेषता वज़न के द्वारा पैदा होती है।

यहाँ पर एक बात को बयान कर देना ज़रूरी है वह यह है कि कुछ लोगों ने वज़न को काव्य के लिए आवश्यक नहीं निश्चित किया है। किन्तु अक्सर अरब और पश्चिमी नक़्क़ादों ने इसे काव्य का अनिवार्य विषय क़रार दिया है। कलात्मक वज़न तकमील का एक अन्सर है जब से इन्सान ने इन्सान की दृष्टि से जीवन शुरू किया इसमें अपने दिली एहसासात को संगठित अंदाज में अदा करने की कोशिश की। यही कारण है कि वज़न और क़ाफ़िया के विरुद्ध कोशिशों के उपरान्त दुनिया की भाषाओं में आमतौर से और अरबी भाषा में विशेष रूप से वज़न की आवश्यकता और इसकी हमगीरी बदस्तूर क़ायम रही और आज भी मौज व मुक़फ़ी काव्य का ही बोलबाला है आज़ाद नज़्म तहरीक परवान न चढ़ सकी।

अरबी भाषा में शेर का आरम्भ कैसे हुआ :–

इस बात में सामान्य रूप से लेखकों में मतभेद है कि अरबी भाषा में काव्य का आरम्भ कैसे हुआ। कुछ कहते हैं अरबों ने सबसे पहले गद्य आरम्भ किया और इसके माध्यम से काव्य तक पहुँच गये। कुछ कहते हैं कि सजाअ के बाद मुक़फ़ा व मौज कलाम का काल आया। ये बात सामूहिक रूप से कही गयी है कि सबसे पहली वस्तु जो काव्य से मिलती जुलती थी वह मुसज़्ज़ा शब्द थे। जिसे सामान्य रूप से काहिन (प्रोहित या साधू के रूप में दीनी पेश्वा) और विद्वान लोग कहा करते थे।[7] ये मुक़फ़ा शब्द होते थे जिन्हें मन्त्रों की तरह इबादगाहों में दुआ वग़ैरा के अवसर पर कहा जाता था या इनके माध्यम नीति व दर्शन की बातों को ज़बानी (मौखिक) याद कर लिया जाता था।

वह वाक्य जिनको अरब याद रखना चाहते थे उन्हें मुसज्जाअ और संक्षिप्त शब्दों में मौखिक याद कर लेते थे। इस सज्जाअ में धीरे–धीरे वज़न और क़ाफ़िया का असनाफ़ हुआ। वह इसलिए कि ये संक्षिप्त और जामए कलामात सुनने में कानों को भले लगते थे और जब इनमें वज़न और एक आवाज़ पर अन्तिम शब्द टूटने से तरन्नुम सा पैदा हो गया तो काव्य की प्रारम्भिक प्राचीन रूप अर्थात वज़न पैदा हुआ। जिसे रज़ज़ कहते हैं। इस रज़ज़ के आरम्भ की ये एक रोचक कहानी है।

कहते हैं कि मिज़्र बिन नज़ार अपने ऊँट पर से एक बार गिर पड़ा और इसका हाथ टूट गया जब उसे लोग उठाकर ले चले तो तेज़ दर्द से उसने चिल्लाकर कहना शुरू किया हाय मेरा हाथ, हाय मेरा हाथ आदमी अच्छे गले का था इसलिए जब उसके मुँह से एक विशेष अवसर और विशेष अवधि से यह शब्द निकलने लगे जिनमें तकलीफ़ और दर्द के कारण से आह भी पैदा हो गया था तो ऊँटों ने उन्हें ग़ौर से सुना और आवाज़ के पीछे तेज़ चलने लगे।[8]

अरबों को इससे पहली बार यह अनुमान हुआ कि यदि इस प्रकार की आवाज़ उस अंदाज़ से निकाली जाय तो ऊँट तेज चलने लगते हैं। इसलिए उन्होंने मिज़्र के शब्दों के अनुसार ''हा यदा, हा यदा'' की आवाज़ मुँह से निकाली और अनुभव किया कि ऊँटों पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ा। इसलिए उसका रिवाज पड़ गया और इस प्रकार आवाज़ पैदा करके ऊँटों को तेज चलाने के लिए 'खुदी ख़्वानी' की शुरुआत बनी जो वास्तव में गाने का एक रूप था इसी गाने को रजज़ कहते हैं। रजज़ का शाब्दिक अर्थ है ऊँट का चलना और उसका हिलना रजज़ के आरम्भ के बाद उसमें और उन्नति हुई और दूसरी आवाज़ें पैदा हुयीं। इसलिए रज़्मिया और फ़ख़रिया अवसर के लिए अलग वज़न एजाद हुआ और ग़ज़ल आदि के लिए अलग और इसी प्रकार धीरे–धीरे अरबी कविता की सारी बहरें पैदा हुई जिनकी संख्या लगभग 15 है।

अरबों का अदब वास्तव में उनकी शायरी थी और इस शायरी को इनके यहाँ वह अहमियत हासिल थी जो शायद ही किसी दूसरी जाति को हासिल हुई हो।[9] सजा और उसके बाद रजज़ दोनों में कशिश के कारण वो नग़मगी यह संगीत है जो कलाम के किसी और उदाहरण में उस समय तक नहीं मिली थी। इसलिए कहा जाता है कि गाने और काव्य का चोली दामन का साथ है वरन कुछ लोग कहते हैं कि इन्सान

---

[7] अरबी अदब की तारीख़, पृष्ठ 124

[8] अरबी आदब की तारीख़, पृष्ठ 125

[9] जज़ीरतुल अरब, मौलाना मोहम्मद राबे हसनी, पृष्ठ 180

की इस फ़ितरती ख़्वाहिश का वह अपने उत्साह का परिचय सुन्दर और दिलकश आवाज़ में अर्थात गाकर कविता कहने से गहरा सम्बन्ध है। इसका प्रमाण यह है कि इन्सान ने सबसे पहले गा कर अपने दिल की बात अपने देवताओं से और उसके बाद अपने बादशाहों से कही इसीलिए यूनानियों और रोमानियों के यहाँ कहते थे 'शेर गाया' शेर मौज किया या शेर कहा नहीं कहते थे। इसी प्रकार अरबी में भी लय के साथ शेर गा कर पढ़ा, अभी तक इस्तेमाल होता है।

अरबों में गा कर शेर पढ़ने की रीति जाहिली काल से चली आ रही है। इसलिए शायर अल आशा के सम्बन्ध में मशहूर था कि वह अपना कलाम गा कर सुनाया करता था इसलिए अरबों ने इसका नाम अरबो को झांझ (बाजा) रखा था बाद के कालों में भी कविता को गा कर सुनाने की रीति कायम रही।[10] एक समय के बाद कविता में से गाने का असर समाप्त हो गया और कवियों ने इसकी कोशिश की कि मरवज्ज़ा बहरों में से इन बहरों में शेर कहें जिनमें संगीत का पहलू भारी होता था कि प्रारम्भ में जिस प्रकार रकेक कलाम को भी नग़मगी और संगीत के माध्यम से बना दिया जाता था। उसकी आवश्यकता न रहे और शेर स्वयं ही इतने अधिक संगीत लिये हुये और सामयीन नवाज़ होकर बिना संगीत के भी दिलकश और प्रभावशाली है। इसलिए यहाँ से कलात्मक काव्य और गाने का मार्ग अलग अलग हो गया और दोनों प्रकार के लिखने के तरीके भी अलग हो गये यही स्थिति आज तक क़ायम है।

काव्य का विभाजन :–

काव्य को निम्नलिखित तीन प्रकार से विभाजित किया गया है। किन्तु यह विभाजन अरबी साहित्य में पश्चिमी साहित्य से लिया गया है नहीं तो जाहिली काल में यह असनाफ़ मारूफ़ न थे और न शेर से सम्बन्धित उस कला में मस्तिष्क इतना स्पष्ट था। हमने इस विभाजन को इसलिए अपनाया है कि उससे जाहिली काल को समझने और परखने में सहायता मिलेगी और यह भी मालूम हो सकेगा कि इस विभाजन के अनुसार जाहिली काव्य पूरा उतरता है कि नहीं और ये कि इन विशेषताओं में कौन सी विशेषता जाहिली काल में पायी जाती थी और कौन सी नहीं और फिर इसका कारण क्या था?

1 रज़मिया :–

रज़मिया इस नज़्म को कहते हैं जिसमें युद्ध की घटनायें और बहादुरी के कारनामों का वर्णन होता है अर्थात ऐसे काव्य जिनमें हीरो के बहादुरी के कारनामें बयान किये जाते हैं। सामान्य रूप से कवि अपने हीरों के कारनामों का वर्णन करते समय माफ़ूक़ अल फ़ितरत अवसाफ़ को भी इससे मंसूब कर देते हैं और ये मफ़क़ फ़ितरत बातें सामान्य रूप से बुरी नहीं लगती क्योंकि कवि अपनी शक्ति का सहारा लेकर उन्हें इस प्रकार बयान करता है कि उस में अज़मत व शौकत का पहलू दो गुना हो जाय।[11] क्योंकि रज़मिया काव्य में बड़ाई वह शान शौकत मुख्य वस्तु होती है और यह बिना शक्ति का सहारा लिए पैदा नहीं हो पाती। रज़मिया काव्य समस्त काव्य की विशेषताओं में सबसे पुरानी समझी जाती है। कहते हैं इसका वजूद शुरू में धार्मिक कार्यों के लिए हुआ। इस लिए पुरानी रज़मिया काव्य के पात्र सामान्य रूप से देवी और देवता होते थे। रज़मिया काव्य का उदाहरण होमर की अलयादा, हिन्दुस्तान की महाभारत या रामायण, अबरानी में दाऊद के असफ़ाक और फारसी भाषा में फिरदौसी का शाहनामा है।

जहाँ तक अरबी भाषा में रज़मिया काव्य के वजूद का प्रश्न है जाहिली काल में रज़मिया का वजूद था। इनका कहना है कि अरबों ने भी अबरानियों की तरह धार्मिक काव्य किये होंगे। इस प्रकार हमारी प्राचीन कविता में भी हमारे सामूहिक जीवन और हमारे हीरों के जीवन का नक्शा खींचने में कमाल फ़न का प्रदर्शन किया होगा। होमर के अलयादा और महाभारत व रामायण आदि के मुक़ाबले में जाहिली कवियों का कलाम कहीं अधिक था। ये लोग प्रमाण में यह कहते हैं कि अबूतमाम लेखक हमासा को चौदह हजार संक्षिप्त क़सीदे याद थे और ये बड़े क़सीदों और छोटी नज़्मों के अतिरिक्त थे। हमास राबिया को 27 हजार क़सीदें याद थीं इसके अलावा हुरूफ़ तहजी के हर अक्षर पर उसे एक हजार क़सीदे याद थे इसी प्रकार असमी को 14 हजार संक्षिप्त क़सीदें याद थे। अबू ज़म ज़म एक सौ कवियों के काव्य की रवायत करता था।

---

[10] अरबी अदब की तारीख़, पृष्ठ 126

[11] अरबी अदब की तारीख़, पृष्ठ 127

2 तमसीलिया :–

तमसीली नज़्म वास्तव में मन्ज़ूम मकालमा का दूसरा नाम है और यहीं से तमसीली नज़्म का सम्बन्ध ड्रामा से पैदा हो जाता है। जब कवि देखता है कि कलाम की केवल काव्य के क़ालिब में ढाल देने से प्रभावशीलता में वो ज़ोर पैदा नहीं होता जैसे वो पैदा करना चाहता है तो अपने विचार और महसूसात को वो घटनाओं के क़ालिब में ढ़ालता है और इन्हें पात्रों की ज़बान से इस प्रकार अदा कराता है कि घटनाओं की हूबहू तस्वीर आँखों के सामने आ जाती है। इसलिए तमसीलिया में पात्रों के साथ सामान्य रूप से मनाज़िर भी पेश किये जाते हैं और वे इस प्रकार मरबूत किया जाता है कि स्टेज पर भी दिखाना संभव हो सके। कवि सामान्य रूप से इस सनफ़ शायरी के माध्यम से व्यवहारिक विशेषताओं और मानवीय विशेषताओं या नीति व दर्शन की अक्क़ासी करते हैं चाहे उन्हें मंच पर दिखाना संभव न हो।

3 तरबिया :–

तरबिया काव्य का अर्थ शुरू में यह रहा कि यह कविता का वह रूप है जिसे गा कर पढ़ा जा सके इन गानों का सम्बन्ध सामान्य रूप से हुस्न व इश्क़ और क़ल्बी वारदात से होता था। इसमें ग़म जाना के साथ दोराँ भी झलकता था और यह भी ग़म दोराँ बढ़कर स्वयं कवि का अपना ग़म भी बन जाता था। रज़मिया काव्य के मुक़ाबले में तरबिया में कवि हुस्न व इश्क के जान फ़िज़ा नग़मे भी गाता है और देशप्रेमी के सरमंदी और लाहूती राग भी। यहाँ कवि अपने जज़्बात का भरपूर इज़हार करता है अपने दिल की धड़कने सुनाता है और इन्हीं के माध्यम से दूसरों के दिल की धड़कने सुनकर इनका ग़म अपना ग़म बना लेता है। क्योंकि कवि यहाँ अपने व्यक्तित्व में दुनिया के दर्द व ग़म में और उसकी अबदरी को समो लेता है और जीवन के अनुभव की बड़ी सुन्दरता से अपने व्यक्तित्व का हिस्सा बना लेता है और फिर तरबिया के माध्यम से इसका भरपूर इज़हार करता है। इसलिए तरबिया में केवल खुशी और हुस्न व इश्क के दिलफरेब नगमों को ही शामिल नहीं किया जाता बल्कि उसमें मदह, हजू हम्मासा फ़ख़र आदि को भी शामिल किया जाता है।

तरबिया में इन्सानी जीवन और उसके अनुभव की पूरी अक़ासी होती है इसलिए ये सनफ़ शायद उसी समय शुरू हो चुकी थी जब कि इन्सान ने लिखना–पढ़ना नहीं शुरू किया था। जाहिली काल के काव्य में तरबिया के तमाम विशेषताएं पूरी अधिकता से पायी जाती हैं। मुख्य रूप से ग़ज़ल, फ़ख़र, हमासा और मरसिया में कवियों ने अपने अपने कमाल फन को स्पष्ट किया है। अरब में हर क़बीला की ख़्वाहिश होती थी कि इसमें शायर, लीडर और वक्ता पैदा हों लेकिन इन तीनों में से इसे सबसे ज़्यादा महबूब शायर ही था।[12]

सन्दर्भ

1. अरबी साहित्य का इतिहास, डॉ0 अहमद नसीम सिद्दीक़ी
2. अरबी अदब की तारीख़, उक़्तदी हसन अज़हरी
3. अरबी साहित्य का इतिहास, डॉ0 नरेन्द्र बहादुर श्रीवास्तव व प्रो0 शाह अब्दुस्सलाम
4. जज़ीरतुल अरब, मौलाना मोहम्मद राबे हसनी
5. तारीख़ अदब अरबी, डॉ0 तूफ़ेल अहमद मदनी

[12] अदब अरबी, डॉ0 तूफ़ेल अहमद मदनी, पृष्ठ 34

बौद्ध साहित्य में पर्यावरणीय चेतना : समकालीन दृष्टिकोण से मूल्यांकन

डॉ. संध्या कुमारी*

सारांश–

यह शोध–पत्र बौद्ध साहित्य में अंतर्निहित पर्यावरणीय चेतना की अवधारणा तथा उसकी समकालीन प्रासंगिकता का मूल्यांकन करता है। इसमें प्रतीत्यसमुत्पाद, अहिंसा, करुणा तथा अपरिग्रह जैसे मूल बौद्ध सिद्धांतों का विश्लेषण किया गया है, जो प्रकृति के साथ सह–अस्तित्व एवं सतत जीवनशैली को प्रोत्साहित करते हैं। शोध में पारंपरिक ग्रंथों (जैसे पालि पिटक एवं महायान सूत्रों) के साथ–साथ आधुनिक बौद्ध आंदोलनोंकृजैसे एंगेज्ड बुद्धिज्म, इको–सत्त्व तथा पश्चिमी बौद्ध जलवायु कार्यकर्ताकृका अध्ययन किया गया है। थाईलैंड, भारत तथा पश्चिमी देशों के कुछ उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि बौद्ध नैतिकता को व्यवहार में परिवर्तित करते हुए पर्यावरणीय संकटों से निपटने के प्रयास किए जा रहे हैं। यद्यपि पारंपरिक ग्रंथों में प्रत्यक्ष पर्यावरणीय नीतियाँ सीमित हैं, किंतु आधुनिक बौद्ध विचारकों की पुनर्व्याख्या ने इन सिद्धांतों को वर्तमान संदर्भ में प्रभावशाली बना दिया है। अतः यह निष्कर्ष निकाला गया है कि बौद्ध दर्शन एक सुदृढ़ नैतिक आधार प्रदान करता है, जो आधुनिक पारिस्थितिक असंतुलन के समाधान में सहायक हो सकता है।

संकेत शब्द– *बौद्ध पर्यावरणवाद, पर्यावरणीय नैतिकता, जलवायु सक्रियता, सतत जीवनशैली, बोधिसत्त्व आदर्श एवं बौद्ध ग्रंथ और प्रकृति।*

प्रस्तावना–

बौद्ध धर्म न केवल अध्यात्मिक मार्गदर्शन का मार्गदर्शक है, बल्कि एक समग्र जीवन दर्शन के रूप में प्रकृति के प्रति सम्मान, संतुलन और करुणा का संदेश देता है। बुद्ध और उनके अनुयायियों ने प्रकृति के प्रति संवेदनशील दृष्टिकोण अपनायाकृइसमें जल, वायु और भूमि का पवित्र स्वरूप विशेष महत्व रखता है। आधुनिक समय में जब प्राकृतिक संसाधनों का दोहन और प्रदूषण वैश्विक समस्या बन चुका है, तब बौद्ध दर्शन की पर्यावरणीय अवधारणाएँ विशेष रूप से प्रासंगिक हो जाती हैं। बौद्ध धर्म में मन और कर्म के बीच गहरा संबंध हैरू यदि मन दूषित (लोभ, क्रोध, मोह से ग्रसित) होता है, तो कर्म भी दूषित होते हैं, जिससे पर्यावरणीय क्षरण की प्रक्रियाएँ जन्म लेती हैं। संज्ञा ष्षुद्धिष् का प्रयोगकृविशुद्धिकृमूलतः मानसिक शुद्धता के लिए होता है, लेकिन बौद्ध शिक्षाओं में यह बाहरी प्रकृति की शुद्धता से भी संबंधित बताया गया है। द्ध के अनुसार जीवन और पर्यावरण संबंधी संकटों का मूल कारण मन की आदिम स्थिति में निहित है। अतः मानसिक और नैतिक शुद्धि ही बाहरी प्रकृति की शुद्धता का मार्ग है।

वर्तमान युग में जलवायु परिवर्तन, वायु और जल प्रदूषण, जैवविविधता का क्षरण, प्लास्टिक कचरे की समस्या जैसी चुनौतियाँ मानवता के अस्तित्व को संकट में डाल रही हैं। इस संदर्भ में, प्राचीन धार्मिक और दार्शनिक परंपराओंकृजिनमें पर्यावरणीय चेतना निहित हैकृकी आधुनिक प्रासंगिकता पर विचार करना आवश्यक हो गया है। बौद्ध धर्म की शिक्षाओं में करुणा अहिंसा, अपरिग्रह, तथा प्रतीत्यसमुत्पाद जैसे सिद्धांत पर्यावरण नीति और व्यवहार के लिए प्रभावशाली नैतिक आधार प्रदान करते हैं।

पर्यावरणीय चेतना– बौद्ध धर्म जल को सभी जीवों के जीवन का आधार मानता है। अंगुत्तर निकाय में बुद्ध ने स्पष्ट निर्देश दिया है कि पानी को दूषित करना पाप हैकृक्योंकि जीवन जल पर निर्भर है। विनय पिटक में भिक्षुओं को नदियों या तालाबों में मल–मूत्र नहीं त्यागने की कड़ाई से हिदायत दी गई है–यह आचरण प्रकृति का सम्मान करना सिखाता है।

वृक्ष की छाया में निवास, एकांत का आसन,
ध्यान के लिए सुन्दर विषयकृयही ध्यानयोगी की शांति है।(थेरगाथा)

पवित्रता–भूमि में जीवन और कृषि के अंतर्निहित तत्व हैं। बुद्ध ने विनय पिटक में सीधे आदेश दिए कि भिक्षु अनावश्यक रूप से मिट्टी न खोदें, ताकि भूमि में रहने वाले सूक्ष्म जीवों व पौधों को हानि न पहुँचे। वहीं वनारापा सूत्र में वृक्ष, झाड़ियाँ या तालाब आदि सेट–एसाइड करने में पुण्य फल मिलता हैकृक्योंकि वे जीवों को निवास प्रदान करते हैं, भूमि को संरक्षण मिलता है और जीवन का उत्कर्ष होता है। वायु को स्पष्ट रूप से

* पी–एच0 डी0, प्राचीन भारतीय एवं एशियाई अध्ययन विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

ग्रंथों में "पवित्र" रूप से वर्णित नहीं किया गया, परन्तु बौद्ध नैतिकता में उलुप्त सिद्धांतों के माध्यम से वायु–विषमता से दुर रहने की शिक्षा मिलती है। उदाहरणतः 'ध्यानस्थल' को धूम्रविहीन बनाए रखने की प्रवृत्ति थी, जिससे मन और प्रकृति दोनों शुद्ध रहें। आधुनिक बौद्ध आंदोलन जैसे थिच न्हात हान्ह में वायु की शुद्धि ध्यान अभ्यास, गार्डनिंग और प्रकृति–प्रेमी जीवनशैली के माध्यम से आत्मसात की जाती है।

एक बूँद में समस्त ब्रह्मांड का प्रतिबिंब होता है।(महायान ग्रंथ)

इस प्रकार बौद्ध दर्शन में चार महाभूत को न केवल बाह्य प्रकृति बल्कि आंतरिक शरीर और मन की संरचना भी माना गया है। इस दृष्टि से, जल-वायु-भूमि की शुद्धि न केवल बाह्य पर्यावरण के लिए, बल्कि व्यक्ति के भीतर मानसिक और शारीरिक संतुलन के लिए भी आवश्यक है।

द्वेष से द्वेष कभी समाप्त नहीं होता

द्वेष की समाप्ति केवल अद्वेष (मैत्री) से होती है–यह सनातन धर्म है। (निग्रोधामिगा जातक)

यह लेख पत्र बौद्ध साहित्य और समकालीन बौद्ध पर्यावरणीय प्रवृत्तियों को समाहित करते हुए पर्यावरणीय चेतना की संरचना और प्रासंगिकता का विश्लेषण करता है। विशेष रूप से यह देखता है कि कैसे संलग्न बौद्ध धर्म, इको-सत्व मॉडल और पश्चिमी बौद्ध जलवायु सक्रियता जैसे आधुनिक बौद्ध बौद्ध अनुयायियों से प्रेरित हैं और निजी तौर पर निजी को संवर्धित करते हैं।

उज्ज्वल कुमार[1] (2015) ने इको–स्पिरिचुअलिटी एन ओवरव्यू ऑफ बौद्ध अप्रोचेज टू इकोलॉजी में बौद्ध बौद्धों में पारिस्थितिक चेतना, अहिंसा, संयम, और इंटरकनेक्शन के सिद्धांत का आधुनिक संदर्भ में परीक्षण किया है और यह निष्कर्ष निकाला है कि बौद्ध दर्शन पर्यावरण संरक्षण की दिशा में नैतिक गहन दृष्टिकोण उपलब्ध कराता है।[2]

थिच नहत हान इंटरबीइंग की अवधारणा, डायमंड सूत्र की व्याख्या और नोबल अष्टांगिक पथ को पर्यावरण जागृति से जोड़कर, आधुनिक बुद्धिजीवियों को गहन दृष्टिकोण और सामाजिक परिवर्तन का मार्ग सिखाता है।[3,4]

लैम्बर्ट श्मिटहौसेन, इयान हैरिस, स्टीफन काजा और क्रिस्टोफर इवेस जैसे विद्वान ने तर्क दिया है कि प्रारंभिक बौद्ध ग्रंथों में अभिनय कार्यों का आधार धार है – ये आलोचक मानते हैं कि बौद्ध बौद्ध धर्म में लगे हुए आधुनिक साहित्य की सामाजिक संरचना है, न कि ग्रंथों पर आधारित सिद्धांत।

सुलक शिवराक्सा, थिच नहत हान, दलाई लामा जैसे बौद्ध विचारकों ने बौद्ध धर्म के माध्यम से बौद्ध धर्म के माध्यम से आगे बढ़ने का नेतृत्व किया है। शिवराक्षस ने उपभोक्तावाद विरोधी दृष्टिकोण बौद्ध नैतिकता से जोड़ा एवं अंतर्राष्ट्रीय नेटवर्क की स्थापना की है।[5] खोरयुग पहल (दलाई लामा) द्वारा हिमालय क्षेत्र में व्याख्या, जैविक खेती आदि कार्यक्रम संचालित किये गये हैं।

विलुप्त होने वाले विद्रोह बौद्धों, वन अर्थ संघ आदि जैसे पश्चिमी बौद्ध कार्यकर्ताओं ने जोआना मैसी की इकोसत्व की अवधारणा पर आधारित इको-भावनाओं और बुद्धिमान आशा जैसे दृष्टिकोण विकसित किए, जो जलवायु सक्रियता में बौद्ध नैतिकता को संकलित करते हैं।[6]

लियू एट अल. (2015) का इको-सत्वः थाईलैंड में प्लास्टिक अपशिष्ट संकट के लिए एक बौद्ध प्रतिक्रिया जिसे अनुभवजन्य अध्ययन कहा जाता है कि इको-सत्व सिद्धांतों के आधार पर प्लास्टिक कचरे को कम करने, पुनः उपयोग करने और पुनर्चक्रण करने की प्रक्रियाएं प्रोत्साहित की जा रही हैं।

अध्ययन का प्रश्न–

1. बौद्ध साहित्यकृप्रारंभिक एवं आधुनिककृमें पर्यावरणीय चेतना की विवेचना कैसे की गई है?
2. समकालीन बौद्ध बौद्ध धर्म (बौद्ध धर्म, इको–सत्व, पश्चिमी जलवायु सक्रियता) में स्मारक का क्या स्वरूप है?
3. किस बौद्ध ग्रंथ से प्रेरित दृष्टिकोण आधुनिक पर्यावरण नीति और सामाजिक परिवर्तन में प्रभावशाली हो सकते हैं?

अध्ययन का उद्देश्य–

क. पारंपरिक बौद्ध साहित्य में पर्यावरणीय नैतिकता के तत्वों का विश्लेषण।

ख. समकालीन बौद्ध पर्यावरण आंदोलन और उनके उदाहरण प्रस्तुत करना।

ग. ग्रंथ आधारित दृष्टिकोण तथा सामाजिक अभियानों के बीच की दूरी या समन्वय का मूल्यांकन।

अनुसंधान पद्धति–

साहित्य आधारित विश्लेषण (पाठ्य समीक्षा)– पालि विहित स्रोत, हीरा सूत्र, महायान सूत्र से मूल सिद्धांतों का अध्ययन।

द्वितीयक स्रोत (माध्यमिक स्रोत)– विद्वान–काजा, श्मिटहौसेन, इवेस, टकर, मैसी आदि–के शोध लेख।

मामला अध्ययन (केस स्टडी)– इको-सत्व आंदोलन/थाईलैंड, संलग्न बौद्ध नेटवर्क, पश्चिमी बौद्ध जलवायु सक्रियता।

दार्शनिक और तुलनात्मक विश्लेषण– बौद्ध सिद्धांतों की तुलना आधुनिक पर्यावरण नैतिकता (गहन पारिस्थितिकी, स्थिरता) के साथ।

पर्यावरणीय चेतना ग्रंथ–आधारित अवलोकन–

क. प्रतीत्यसमुत्पाद – पेटिका–समुप्पदा सिद्धांत से स्पष्ट होता है कि सभी कुछ सर्वसम्मति से स्वीकृत हैंकृ यह सिद्धांत आधुनिक पारिस्थितिकी और गहन पारिस्थितिकी से मेल खाता है। भिक्खु अनालायो ने इस मानवकेंद्रित आलोचना को स्पष्ट करते हुए सुझाव दिया कि पारंपरिक दृष्टिकोण में मानव को सर्वोच्च स्थान देने का मतलब प्रकृति का लाभ नहीं बल्कि नैतिक जिम्मेदारी के साथ उपयोग करना हो सकता है।

इसका होना उस पर निर्भर हैय इसका उत्पत्ति, उसके उत्पन्न होने पर निर्भर है,
इसका अभाव, उस के अभाव से होता हैय इसका नाश, उसके नाश से होता है।(पालिस्रोतः संयुक्त निकाय 12.1)

ख. नोबल अष्टांगिक पथ के सिद्धांत– सही आजीविका, सही कार्य, सही मानसिकता जैसे पथ पर्यावरण–हितैषी आचरण का मार्गदर्शन करते हैं। थिच नहत हान द्वारा पारिस्थितिक तंत्र के प्रति जागरूकता को जोड़ा गया है, जो ग्रह संरक्षण की दिशा में आंतरिक परिवर्तन उत्पन्न करता है।

ग. करुणा, हानि न पहुँचाना और अहिंसा– करनियामेट्टा सुट्टा में पूरे विश्व के प्रति मेट्टा की शिक्षा, पर्यावरण में अहिंसा को खत्म करना है। यह दृष्टिकोण वन संरक्षण, वन्यजीव देखभाल और टिकाऊ कृषि जैसे माध्यमों से व्यवहारिक रूप में लिया जा सकता है।

समकालीन बौद्ध पर्यावरण आंदोलन–

क. इको–सत्व, थाईलैंड– प्लास्टिक प्रबंधन के तहत पर्यावरण–सत्त्व सिद्धांतों के तहत साक्षात्कार में तीन चरणीय दृष्टिकोण (कम करें, पुनरू उपयोग करें, रीसायकल करें) और अध्ययन के माध्यम से प्रभाव की सफलता को दर्शाया गया है। इसमें बताया गया है कि धार्मिक सिद्धांत को कैसे रूपांतरित किया जा सकता है।

ख. सुलक शिवराक्षस और संलग्न बौद्ध धर्म– शिवराक्षस ने धर्म का सामाजिक उपयोग करते हुए उपभोक्तावाद, विकासवादी मॉडल आदि से द्वंद्वित बौद्ध मूल्यों को पर्यावरण सक्रियता से जोड़ा। इंटरनेशनल एंगेज्ड बौद्ध नेटवर्क की स्थापना ने ग्लोबल लेवल पर मेरुअल प्राइवेट को मान्यता दी है।

घ. ग्यालवांग द्रुक्पा – हिमालयी पारिस्थितिकी अभियान– ग्यालवांग द्रुक्पा ने लिव टू लव आंदोलन के माध्यम से हिमालय में लाखों पवित्र ग्रंथ, प्लास्टिक सफाई ट्रेक, पर्यावरण–शिक्षा, टिकाऊ मठ आदि कार्यक्रम संचालित किए हैं, जो स्थानीयकृत पर्यावरणीय कार्रवाई का उदाहरण हैं।

ड. पश्चिमी बौद्ध जलवायु कार्यकर्ता– वन अर्थ संघ, एक्सआर बौद्ध जैसे समूह ष्इकोसत्व प्रशिक्षणष् जलवायु भावनाएं नेविगेशन, बुद्धिमान आशा खेती आदि पर उपकरण हैं। वे बौद्ध सिद्धांत से प्रभावित होकर जलवायु न्याय और कार्रवाई की रूपरेखा विकसित कर रहे हैं।

आलोचनात्मक विश्लेषण–

1. पारिस्थितिकी–आलोचना– ऐतिहासिक कमजोरी में श्मिटहाउजेन, हैरिस, इवेस आदि पर्यावरण–आलोचकों का तर्क है कि प्रारंभिक बौद्ध साहित्य में पारिस्थितिक नैतिकता की स्पष्ट व्याख्या नहीं थी। संलग्न बौद्ध धर्म अधिक सामाजिक संरचना से उत्पन्न हुआ और ग्रंथ–आधारित सिद्धांत पर आधारित है।

2. मानवकेंद्रित बनाम आंतरिक मूल्य बहस– भिक्खु अनालयो का यह दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है कि बौद्ध दृष्टिकोण मूलतरू मानवकेंद्रित था। परन्तु गैर–हानिकारक नैतिकता इसे पर्यावरण व्यावहारिकता की दिशा में देख सकती है, जहां आंतरिक मूल्य की कमी के बावजूद सक्रिय संरक्षण संभव है।

3. पश्चिमी पुनर्व्याख्या और सांस्कृतिक अनुवाद– पश्चिमी बौद्ध आंदोलन बार–बार जोआना मैसी, थिच नहत हान आदि की शिक्षाओं की पुनर्व्याख्या पर आधारित होते हैं, जो कभी–कभी उदार अध्यात्मवाद के प्रभाव से होते हैं। उदाहरण के तौर पर किसी विद्वान ने मैसी के विचारों को चयनात्मक पुनर्व्याख्या माना है।

निष्कर्ष – बौद्ध धर्म में जल, वायु और भूमि तीनों तत्वों की शुद्धता को संरक्षित करना केवल बाह्य दोष–निवारण नहीं बल्कि आंतरिक मानसिक शुद्धि से जुड़ा हुआ एक नैतिक धर्मदर्शन है। बुद्ध ने जीवन को प्रकृति के साथ सह–अस्तित्व और संतुलन में जीने का मार्गदर्शित किया। उनका मानना था कि मन शुद्ध होगा तो उसके कर्म भी शुद्ध होंगे – और परिणामस्वरूप प्रकृति शुद्ध रहेगी।

बौद्ध शिक्षाएँ आज के समय में पर्यावरणीय संकट से निबटने के लिए एक सतत, नैतिक और व्यवहार्य दृष्टिकोण प्रदान करती हैं। यदि हम सरल जीवन, करुणा, संयम, और अति–उपभोग से दुर जीवनशैली अपनाएं, तो जल, वायु और भूमि की पवित्रता स्वाभाविक रूप से संरक्षित हो सकती है। अतः बौद्ध साहित्य में अन्योन्याश्रितता, करुणा, संयम जैसे मूल्य स्वतंत्र का नैतिक आधार प्रस्तुत करते हैं। जबकि प्रारंभिक ग्रंथों में स्पष्ट पर्यावरण–नैतिकता सीमित हो सकती है, पर संलग्न बौद्ध धर्म और आधुनिक कार्यकर्ताओं ने प्रभावशाली पर्यावरणीय नैतिकता को रूपांतरित कर दिया है। साथ ही इको-सत्व जैसे स्थानीयकृत केस अध्ययन और वैश्विक जलवायु सक्रियता समूह द्वारा चित्रित किया गया है कि बौद्ध डेटा स्रोत केवल सिद्धांत नहीं है, बल्कि व्यवहारिक परिवर्तन का माध्यम हो सकता है। आलोचनात्मक दृष्टिकोण, जैसे कि ऐतिहासिक कमजोरी या मानवकेंद्रित आधार, महत्वपूर्ण चिंताएँ हैं, लेकिन पर्यावरण व्यावहारिकता से बौद्ध दृष्टिकोण को व्यवहारिक बनाया जा सकता है।

सुझाव

बौद्ध नैतिकता को पर्यावरण शिक्षा में जोड़ा जाए ताकि विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में पर्यावरण अध्ययन के पाठ्यक्रम में बौद्ध धर्म के करुणा, अहिंसा, प्रतीत्यसमुत्पाद जैसे सिद्धांतों को सम्मिलित किया जा सकता है, ताकि विद्यार्थियों में नैतिक रूप से प्रकृति के प्रति उत्तरदायित्व उत्पन्न हो।

नीति–निर्माण में बौद्ध सिद्धांतों का उपयोग कर विशेषकर दक्षिण एशिया व दक्षिण–पूर्व एशिया के देशों में जहां बौद्ध परंपरा जीवित है, वहां पर्यावरणीय नीतियों को तैयार करते समय बौद्ध मूल्यों को एक नैतिक ढांचे के रूप में अपनाया जा सकता है।

इस प्रकार बौद्ध धर्म को स्थानीय रूप में बढ़ावा देना जिससे बौद्ध मठों और विद्वानों को ''एंगेज्ड बौद्ध धर्म'' को अपनाकर चरित्र, जल संरक्षण, प्लास्टिक मुक्ति अभियान जैसे सामान्य आधार का नेतृत्व करना चाहिए।

इसमें इको–सत्व प्रशिक्षण कार्यक्रम का आयोजन करना उचित होगा जिससे विद्ययालय, भूटान, नेपाल और भारत में इको-सत्व मॉडल को अन्य बौद्ध क्षेत्रों में भी लागू करने में सफल होने के लिए प्रशिक्षण कार्यशालाओं का आयोजन किया जाना चाहिए।

बौद्ध धर्म को जलवायु परिवर्तन के विरुद्ध वैश्विक अभियान में भागीदारी बढ़ानी चाहिए ताकि वन अर्थ संघ या विलुप्ति विद्रोह बौद्ध जैसे अंतर्राष्ट्रीय मंचों से भारत, इंडोनेशिया, भूटान जैसे देशों के बौद्ध संगठन जुड़ सकते हैं।

बौद्ध पर्यावरण स्थलों को संरक्षण प्रदान किया जाए– जैसे बोधगया, लुम्बिनी, कपिलवस्तु आदि पवित्र स्थलों के आसपास हरित क्षेत्र, जैविक खेती, प्लास्टिक मुक्त क्षेत्र घोषित करने के प्रयास किए जा सकते हैं।

पर्यावरण कार्यों में संलग्न बौद्ध मठों, संगठनों या व्यक्तियों पर गहन अध्ययन कर उनके मॉडलों को प्रलेखित और प्रसारित किया जाना चाहिए। बौद्ध पर्यावरणीय नैतिकता की तुलना हिंदू, जैन, सिख आदि धर्मों की पारिस्थितिक दृष्टियों से की जाए ताकि समेकित भारतीय पर्यावरणीय चिंतन विकसित हो सके।

मूल्यों आधारित पर्यावरण आंदोलन को बढ़ावा देना होगा। केवल तकनीकी समाधानों के बजाय भावनात्मक और नैतिक पहलुओं को केंद्र में रखते हुए पर्यावरणीय संकट से निपटना अधिक प्रभावी होगा।

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

1. उज्ज्वल कुमार (2015)। पारिस्थितिकी–आध्यात्मिकता' पारिस्थितिकी के प्रति बौद्ध दृष्टिकोण का अवलोकन। लुम्बिनी प्रभा।
2. समकालीन बौद्ध धर्म में पर्यावरणीय क्रांति' पारिस्थितिकी में व्यक्तिगत और सामूहिक चेतना का अंतर्संबंध। एमडीपीआई धर्म, 2014।
3. एक समग्र बौद्ध पारिस्थितिकी–नैतिकता की ओर। एमडीपीआई धर्म, 2014।
4. धार्मिक परिवर्तन के माध्यम से बौद्ध पर्यावरणवाद का दृष्टिकोण। एमडीपीआई धर्म, 2013।
5. जलती हुई दुनिया, पर्यावरण संकट पर बौद्ध प्रतिक्रिया। एमडीपीआई धर्म, 2012।
6. इको–सत्व केस–स्टडी, फ्रंटियर्स इन साइकोलॉजी, 2015।

अशोक के अभिलेखों में राजनीतिक दर्शन

डॉ. कमल कृष्ण राय*

सम्राट अशोक (ईसा पूर्व 268-232.ई.)के शिलालेख और स्तंभ लेख प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचार और शासन प्रणाली के अध्ययन के लिए अद्वितीय प्राथमिक स्रोत हैं। ये अभिलेख केवल ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन ही नहीं करते, बल्कि एक ऐसे राजनीतिक दर्शन का प्रकटीकरण हैं जिसने राज्य के उद्देश्य, शासक की भूमिका, नीति-निर्माण और लोक-राज्य संबंधों को पुनर्परिभाषित किया। यह शोध पत्र अशोक के अभिलेखों में निहित राजनीतिक दर्शन के मूल सिद्धांतों और उनके व्यावहारिक प्रभावों का विश्लेषण करेगा।

सम्राट की आकांक्षा और आदेश अशोक के अभिलेख भारतीय उपमहाद्वीप पर राजसी अभिलेखों का प्राचीनतम संग्रह है। इस दृष्टि से ये राजसी कार्यशैली के एक महत्त्वपूर्ण नवाचार का प्रतीक है। प्राकृत अभिलेखों में अक्सर किए गए प्रथम पुरुष के प्रयोग तथा उनके सशक्त व्यक्तिगत अभिप्राय को देखकर प्रतीत होता है कि उनके विषयवस्तु को निर्धारित करने में अशोक की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही थी। ये न केवल सम्राट के विचारों एवं कार्यों का विवरण देते हैं बल्कि उसकी आकांक्षाओं और अ कारों को भी अभिव्यक्त करते हैं। अरोमेइक तथा यूनानी अभिलेखों में प्रथम पुरुष के प्रयोग के अभाव और विषयवस्तुत में मौजूद काफी विविधताओं से प्रतीत होता है कि साम्राज्य के उत्तर पश्चिमी भाग में स्थानीय अधिकारियों को अभिलेखों के विषय वस्तु वितरित करने में काफी स्वाधीनता मिली हुई थी। तीसरी सदी ई.पू. के भारत में पत्थर पर घोषणाएं लिखवाना एक अभिनव प्रयोग था जो राजा के शब्दों को चिरस्थायित्व प्रदान करता था। इसका प्रभाव काल-निरपेक्ष था और इसका उद्देश्य तत्काल पाठन और यहां तक कि पठन योग्य बनाना भी नहीं थी। इसका अनुमान उस दौरान साक्षरता के निम्न स्तर से किया जा सकता है और साथ ही इस तथ्य से भी कि अभिलेख अवसर ऐसी सतहों या स्तरों पर लिखे जाते थे जहां पर उन्हें पढ़ा नहीं जा सकता था-उदाहरण के लिए पथरीले उभरे हुए क्षेतिज समूह पर, या स्तंभों के बिलकुल ऊपर, जहां दृष्टि नहीं पहुंचती हो। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि उनमें दर्ज विचारों को मौखिक वाचन और विस्तृत चर्चा के माध्यम से लोगों के बीच प्रचारित किया जाता था। राजा स्वयं देहात में लगातार भ्रमण करते हुए लोगों को धम्म का संदेश देता रहता था। यह बात इस वक्तव्य (वृहत शिलालेखा) से भी साबित होता है कि उसने भ्रमण करते हुए 256 रातें (या दिन) विताई। राजाज्ञाओं को अभिलेखों पर अंकित करने की आवश्यकता मुख्य रूप से अशोक के अधिकाररियों और उत्तराधिकारियों द्वारा धम्म के प्रचार के लिए स्थाई रूप से एक अमिट निर्धारित संदर्भ बिंदु उपलब्ध कराने के उद्देश्य से हुई। इन राजाज्ञाओं के प्रमुख श्रावकों को तीन भागों में बांटा जा सकता है-प्रत्यक श्रावक (अधिकारीगण) अप्रत्यक्ष श्रवक (सम्राट की आम प्रजा) जिनसे उम्मीद की जाती थी कि वे विभिन्न माध्यमों से, मुख्यतः मौखिक रूप से अपने राजा के संदेश से अवगत होंगे; और भविष्य के श्रावक (भावी पीढ़ियां) उसकी अधिकाशं प्रजा उनको पढ़ने में अक्षम थी, पर इसके बावजूद राजा के अभिलिखित शब्दों का एक महत्त्वपूर्ण और स्थाई प्रतीकात्मक मूल्य था।

साम्राज्य के बारे में अशोक की अवधारणा अशोक स्वयं को उत्तराधिकारी के रूप में नहीं बल्कि एक अन्वेषक के रूप में देखता था; एक ऐसा राजा जिसने एक नए प्रकार के राजतंत्र का उद्घाटन किया, जिसने अपने उत्तराधिकारियों के लिए आदर्श प्रतिमान प्रस्तुत किया इसी कारणवश उसके अभिलेखों में उसके पूर्वजों का कोई संदर्भ या वंशावली का उल्लेख नहीं मिलता। राजा के लिए प्रयुक्त 'लाजा मगधे' (बैराट-कलकत्ता बृहत शिलालेख में 'मगध का राजा) क्षेत्रीयता का संकेत करता है। ये अभिलेख दो प्रकार के साम्राज्य की बात करते हैं-एक राजनीतिक और एक नैतिक गौर करना चाहिए कि 'अशोक' (संस्कृत अशोक का प्राकृत में समतुल्य शब्द) का उल्लेख केवल चार अभिलेखों में हुआ है। यह नाम आमतौर पर राजा का व्यक्तिगत नाम समझा जाता है। इसका शाब्दिक अर्थ है 'शोक से मुक्त'। और चूंकि बौद्ध परंपरा में जो शोक से मुक्त है वह बोध को प्राप्त होता है, इसलिए यह संभव है कि बुद्ध के सिद्धांत से प्रभावित होने के बाद राजा ने यह नाम स्वीकार किया था। अक्सर उसके द्वारा धारण की जानेवाली पदवी 'देवानंपिय' और 'पियदासि' कोई आडंबरहीनता का प्रतीक नहीं है। 'देवानंपिय' का अर्थ होता है 'देवों के प्रिय'। अशोक को इतिहास का गहरा एहसास था। उदाहारण के लिए, वृहत् शिलालेख 1 के कुछ संस्करणों में वह युगों पुरानी परंपराओं का आह्वान करता है (पोरणा पकिती); लेकिन वह स्वयं को अक्सर नए कार्यों का सूत्रपात करने वाले के रूप में प्रस्तुत करता है, वह अतीत में अन्य राजाओं द्वारा धम्म के प्रचार द्वारा लोगो का विकास करने की इच्छा (स्तंभ अभिलेख 7) और उस उद्यम में उनको मिली असफलता पर टिप्पणी करते हुए इसके विपरीत अपनी सफलता का उल्लेख करता है और दृढ़ता के साथ बल देते, हुए कहता है कि उसके उत्तराधिकारी 'कल्प' के अंत तक धम्म की उन्नति करने का काम जारी रखेंगे (शिलालेख 4, शिलालेख 5, स्तंभ अभिलेख 7)। अभिलेखों में लिखित कुछ विशिष्ट संदर्भों से पता चलता है कि जिस भूराजनीतिक जगत से अशोक का परिचय था वह इस उपमहाद्वीप से लेकर उत्तर अफ्रीका

* सहायक आचार्य, सी.एम.पी.डिग्री कालेज, प्रयागराज

और भूमध् यसागर तक फैला था। उसके अपने राजनीतिक क्षेत्र का उल्लेख अक्सर 'विजित' शब्द के रूप में हुआ है। केवल एक संदर्भमें उसे मगध का राजा (बैराट-कलकत्ता बृहत शिलालेख) और उसकी राजधानी पाटलिपुत्र (शिलालेख 5) बताया गया है जिसकी तुलना बाहरी क्षेत्रों (बाहिर) के साथ की गई है। राजनीतिक इकाइयों के लिए प्रयुक्त अन्य शब्दों में 'जनपद' आता है जिसके तहत राजा के क्षेत्र तथा उसके निवासी आते हैं। राजा के शासित क्षेत्र के अर्थ में 'विसय' शब्द भी आता है (शिलालेख 13, गिरनार)। अशोक के अभिलेखों में तीन तरह के सीमांत्तवासियों का उल्लेख मिलता है। राजा के अपने राजनीतिक क्षेत्र को उसकी सीमाओं पर स्थित राज्यों ('पचंत') से अलग रखा गया है (शिलालेख 2)। दक्षिण में ये चोलों, पड्यिो, सतियपुत्रों, केरलपुत्रों और ताम्रपर्णी (श्रीलंका) राज्यों के रूप में मौजूद थे। उत्तर पश्चिम में योन (यूनानी) राजा अंतियोक और उसके अन्य पड़ोसी राजा थे। एक दूसरे अभिलेख (शिलालेख 13) में अशोक योन राजा अंतियोक के क्षेत्राधिकार तक, और उसके उपरांत तुरमय, अंतिकिनि, मक और अलिकसुंदर द्वारा शासित भूमि में अपने सभी सीमांतवासियों पर 'धम्म-विजय' (धम्म के माध्यम से विजय) का दावा करता है; यह गौरतलब है कि अशोक के अभिलेखों में कहीं भी उत्तर या उत्तरपूर्व के सीमांत राज्यों का उल्लेख नहीं मिलता। निस्संदेह उस समय में उन क्षेत्रों में राज्य व्यवस्था का उदय ही नहीं हुआ था। अशोक अपने नैतिक क्षेत्राधिकार का राजनीति क्षेत्राधि कार से बाहर तक विस्तृत समझता था। अशोक के अनुसार सभी जीव-जंतुओं (पाण, जीव, भूत) पर उसका शासनाधिकार था; इसलिए राजा मनुष्यों (मनुस) और पशुओं (पसु) के कल्याण के कल्याण के लिए किए जाने वाले कार्यों की घोषणा करता है (शिलालेख 2)। वह अक्सर सामाजिक स्तर के आधार पर भी अपनी प्रजा को वर्गों के में विभाजित करता है; जैसे, उच्च (उसट) और निम्न (छुद) शिलालेख 10)। उसको प्रजा के जिन अन्य वर्गों का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है उनमें ब्राह्मण, समण (संन्यासी) गृहस्थ, स्त्री, जो धम्म के कार्य के प्रति समर्पित हों, और जो नहीं हों। धम्म के अधिकारियों को खासतौर पर आज्ञा दी गई थी (शिलालेख 5) कि वे सभी संप्रदायों, सेवकों एवं स्वामियों, ब्राह्मणों एवं इभ्यों, बेसहारों वृद्धों तथा कैदियों के बीच काम करें। राजा भी अपने राज्य में रहने वाले विभिन्न संप्रदायों के सदस्यों के बीच, खासतौर पर संघ (बौद्ध विहार से संबंधित), निग्रंथ (जैन), और आजीविक (स्तंभ अभिलेख 7) का उल्लेख करते हुए भेद करता है। अपने संप्रदाय (आत्म-पासंड) और अन्य संप्रदाय (पर-पासंड) के बीच भेद नहीं करने तथा लोगों से किसी अन्य के संप्रदाय की निंदा नहीं करने के आग्रह (शिलालेख 12) का उल्लेख यह दिखाता है यदि संप्रदायों के बीच संघर्ष नहीं भी रहा हो तो भी विभिन्न सांप्रदायिक पहचानों और तनावों का अस्तित्व अवश्य रहा होगा । अशोक के अभिलेखों में यह घोषणा की गई है कि उसका सबसे महत्त्वपूर्ण कर्तव्य उसकी प्रजा को जीवन में सुखी बनांना है और उसके बाद उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण रूप से उन्हें निर्देशित कर धम्म के माध्यम से स्वर्ग और आनंद की प्राप्ति करानी है, जो सर्वश्रेष्ठ कार्य है (शिलालेख 4)। अच्छाई, निजी व्यक्तित्व और राज्य-रोमिला थापर की अवधारणा के विपरीत अशोक के धम्म में स्वर्ग को केवल सतही रूप से नहीं जोड़ा गया है। वास्तव में यह राजा के राजनीतिक दर्शन के केंद्र में निहित है: मनुष्य स्वर्ग की प्राप्ति की कामना करता है और राजा का यह दायित्व है कि वह अपनी प्रज्ञा (वास्तव में पूरी मानव जाति) की इस मनोकामना की पूर्ति में मदद करे, इस दायित्व को एक ऋण (अनन) की अवधारण के रूप में अभिव्यक्त किया गया है जिसके लिए वह अपनी प्रजा का ऋणी है (शिलालेख 6, पृथक शिलालेख 2)। अभिलेखों के 'धम्म' और बौद्ध सिद्धांत के धम्म के बीच के संबंध को लेकर काफी वाद-विवाद होते रहे है। अगर हम बाद के बौद्ध पाठ्यात्माक परंपरा के साक्ष्यों के समूह को छोड़ भी दें तो भी अशोक के अभिलेख स्पष्ट रूप से बौद्ध धर्म से अपने संबंध को साबित करते हैं। राजा स्वयं को बुद्ध की शिक्षा का सामान्य अनुयायी बताता है (उपासक, साक्य, बुध - साक्य, वृहत शिलालेख-1) वह कहता है कि उसकी धम्म यात्राएं बोधगया की उसकी तीर्थयात्रा के बाद आरंभ हुई (शिलालेख ४)। बैराट-कलकत्ता के छोटे अभिलेख में उसके द्वारा बुद्ध, धम्म और 'संघ 'में आस्था की घोषणा की गई है और कहा गया है कि बुद्ध के वचन सच्चे वचन थे बुद्ध की शिक्षा को असली धम्म बताया। गिरनार की चट्टान पर सफेद हाथी द्वारा पूरे विश्व के लिए आनंद का संचार करने के बारे में दिए गए संदर्भ में बौद्ध छवि झलकती है; कालसी में एक हाथी की आकृति और 'गजतमें' (सर्वश्रेष्ठ हाथी) शब्द अंकित है;

धौली में हाथी और 'सेतो' (सफेद, यानी सफेद हाथी)। अभिलेख 13 सिर्फ अशोक द्वारा युद्ध के परित्याग की घोषणा ही नहीं है, बल्कि युद्ध के परिणामों पर चिंतन की भी अभिव्यक्ति है। इसने न केवल युद्ध के परिणामस्वरूप होनेवाली क्षति को पुनर्परिभाषित किया है बल्कि धर्मोचित विजय के विवार को भी पुनर्परिभाषित किया है, जो अशोक के राजनीतिक दर्शन को मुख्य आधार है। अभिलेख 13 युद्ध (या शांति) के लिए कोई शब्द नहीं है. बल्कि युद्ध से जुड़ी हत्या, मृत्यु और निर्वासन, तथा युद्ध से होने वाली क्षति और पीड़ा की प्रकृक्ति पर चर्चा है। धम्म के नव उद्देश्यों के लिए विजय प्रतीकों के नियोजन के रूप में अभिव्यक्त किया गया है। यह एक नाटकीय पुनर्नियोजन है क्योंकि अशोक आमतौर पर सैन्य विजय से संबंधित शब्दों एवं विचारों को लेकर, उसके विषय वस्तुओं को फिर से व्यवस्थित कर अपने इन नए प्रतिपादनों का उपयोग करते हुए युद्ध पर भारी अभियोग लगाता है। 'धम्म विजय' (धम्म के माध्यम से विजय) क्षेत्र पर 'आधिपत्य' नही है बल्कि ऐसी 'विजय' है जिसमें हर जगह धम्म कर प्रभावपूर्ण प्रचार शामिल है। धम्म को स्वीकार करना एक बार की घटना नहीं बल्कि एक लगातार जारी 'संघर्ष' है जिसके लिए निरंतर प्रयास और प्रोत्साहन जारी रखना पड़ता है। अशोक कहता है कि अभी तथा आगे भी लोगों को म्म का पालन करने के लिए प्रेरित करने में अपनी सफलता के लिए प्राप्त यश को छोड़कर वह अन्य किसी यश (यस, कीति) को उतना महत्त्व नहीं देता (शिलालेख 10)। यह प्राचीन जगत में राजा के यश के सामान्य आधार के विरुद्ध

अवधारणा थी, जिसके तहत राजा का यश काफी हद तक उसकी युद्ध संबंधी सफलताओं पर निर्भर करता था। अशोक के राजनीतिक दर्शन व नैतिक साम्राज्य की अवधारणा में युद्ध व सैन्य विजय को कोई स्थान नहीं था। अशोक अपनी नैतिक सत्ता में सभी प्राणियों को शामिल करता था। जब वह अहिंसा की बात करता है, तो उसका तात्पर्य सभी जीव-जंतुओं (जीवों, पाणों) से होता है। अभिलेख 4 में अतीत में हुए विभिन्न दुराचारों में वृद्धि का वर्णन है जिसमें जीवों का उत्पीड़न और हत्या का संदर्भशामिल है। साथ ही कहा गया है कि राजा द्वारा धम्म को प्रोत्साहित करने से प्राणियों के उत्पीड़न और हत्या में अभूतपूर्व कमी हुई है और अन्य सद्गणों का विकास हुआ है। एक दावे (लघमान अरामेड़क अभिलेख तथा शर-ई-कुना यूनानी-अरामेईक अभिलेख) के अनुसार राजा द्वारा धम्म के प्रचार के कारण शिकारियों ने शिकार करना छोड़ दिया। मछुआरों ने मछली पकड़ना छोड़ दिया। इस मामले मे राजा के निषेधाज्ञा से शिकारियों तथा खाद्य संग्राहकों के समुदायों की आजीविकाओं पर इसका गंभीर प्रभाव पड़ा होगा। समेकन और प्रशासन की समस्या एक रुझान के कारण, स्पष्ट रूप से उत्पन्न के अतिरिक्त अभिलेख इतने विस्तृत और नि के प्रशासन से संबंधित व्यावहारिक समस् करते हैं। अभिलेख 13 में बताया ग राज्यारोहण के आठ वर्ष बाद कलिंग युद्ध अभिलेखन कलिंग में नहीं हुआ था। ऐसा करने से वहां के निवासियों के घाव जाते। लेकिन उनके नवीनतम काल (शिलालेख 5) को देखने से प्रतीत होता है का पूरा संग्रह अशोक के राज्यारोहण के किया गया होगा, यानी उस युद्ध के या अर्थ यह है कि युद्ध के पांच वर्ष बाद भी संवेनशील मुरा था। ध्यान देने योग्य बात जौगड़ा में अभिलिखित पृथक अभिलेख करने में होने वाली व्यावहारिक समस्यात्र चिंताओं को प्रतिबिंबित करते हैं जो वा राजधानी पाटलीपुत्र के बहुत दूर नहीं थे। मं 'नीति' (राजनीति, शासन) के बारे दोनों अभिलेख यह भी बताते हैं कि शासन समस्याओं से अशोक उपदेश एवं निगरानी था। इनमें धम्म, 'कम्म कर्म तथा श व्यक्तिगत हितों एंव राज्य के उद्देश्यों की 1 का प्रकाशित किया गया है। पृथक अभिलेख सं. 1 'नगलनि वाले अधिकारियों के उद्देश्य से लिखा अनुचित कारावास और कैदियों के साथ क है। इससे पता चलता है कि सुशासन से बारे में बताया गया है। एक पूरा अभिलेखा उन कारणों को भी बताया गया है जिस विचार में प्रमुख रूप से न्याय का महत्त्वा कारीगण वास्तव में न्यायपूर्ण ढंग से व्यव हैं। उदाहरण के लिए उनकी नकारात्मक (ईर्ष्या, क्रोध, बर्वरता, जल्दबाजी, दृढ़ता और थकान) और उनको समझाता है कि इन क्रोध और जल्दबाजी) को पनपने न दें। पालन नहीं किया गया तो 'महापाप' होगा पृथक अभिलेख सं. 2 अशोक की उल्लेख करता है। यह अभिलेख 'महाम अधिकारयों के उद्देश्य से लिखा गया है उल्लेख किया गया है जिसे अमित सो अपनाई जाने की बात को गई थी। कलिंग अशोक के साम्राज्य के पूर्वी किनारे पर समेकन और प्रशासन की समस्याएं-धम्म के प्रति अत्यधि एक रुझान के कारण, स्पष्ट रूप से उत्पन्न होने वाली समस्याओं के अतिरिक्त अभिलेख इतने विस्तृत और विविधतापूर्ण साम्राज्य के प्रशासन से संबंधित व्यावहारिक समस्याओं की ओर संकेत करते हैं। अभिलेख 13 में बताया गय है कि अशोक के राज्यारोहण के आठ वर्ष बाद कलिंग युद्ध हुआ था और उसका अभिलेखन कलिंग में नहीं हुआ था। संभवतः इसलिए कि ऐसा करने से वहां के निवासियों के घाव और अधिक गहरे हो जाते। लेकिन उनके नवीनतम कालानुक्रमिक संदर्भा (शिलालेख 5) को देखने से प्रतीत होता है कि वृहद अभिलेखों का पूरा संग्रह अशोक के राज्यारोहण के तेरह वर्ष बाद ही तैयार किया गया होगा, यानी उस युद्ध के सात वर्ष बाद। इसका अर्थ यह है कि युद्ध के पांच वर्ष बाद भी कलिंग के लिए यह संवेनशील मुद्दा था। ध्यान देने योग्य बात यह है कि धौली और जौगड़ा में अभिलिखित पृथक अभिलेख, ऐसे प्रांतों पर शासन करने में होने वाली व्यावहारिक समस्याओं को लेकर राजा की चिंताओं को प्रतिबिंबित करते हैं जो खासतौर पर साम्राज्य की राजधानी पाटलीपुत्र के बहुत दूर नहीं थे। इन दोनों अभिलेखों मं 'नीति' (राजनीति, शासन) के बारे में बताया गया है। ये दोनों अभिलेख यह भी बताते हैं कि शासन से संबंधित व्यावहारिक समस्याओं से अशोक उपदेश एवं निगरानी के माध्यम से निपटता था। इनमें धम्म, 'कम्म/कर्म तथा शासत्त के बीच तथा व्यक्तिगत हितों एंव राज्य के उद्देश्यों की पूर्ति के बीच के संबंध 1 का प्रकाशित किया गया है। पृथक अभिलेख सं. 1 'नगलवियोहालक' कहलाने वाले अधिकारियों के उद्देश्य से लिखा गया है। इसमें अन्याय, अनुचित कारावास और कैदियों के साथ कठोरतापूर्ण व्यवहार के बारे में बताया गया है। एक पूरा अभिलेख इसी विषय पर केद्रित है। इससे पता चलता है कि सुशासन से संबंधित अशोक के विचार में प्रमुख रूप से न्याय का महत्त्व था। इस अभिलेख में उन कारणों को भी बताया गया है जिसके फलस्वरूप अधि कारीगण वास्तव में न्यायपूर्ण ढंग से व्यवहार नहीं भी कर सकते हैं। उदाहरण के लिए उनकी नकारात्मक मनोवृत्ति के कारण (ईर्ष्या, क्रोध, बर्बरता, जल्दबाजी, दृढ़ता का अभाव, आलस्य और थकान) और उनको समझाता है कि

इन पूर्ववृत्तियों (खासकर क्रोध और जल्दबाजी) को पनपने न दें। अगर इन निर्देशो का पालन नहीं किया गया तो 'महापाप' होगा। पृथक अभिलेख सं. 2 अशोक की पितृतुल्य चिंताओं का उल्लेख करता है। यह अभिलेख 'महामात' कहे जानेवाले अधिकारयों के उद्देश्य से लिखा गया हैं इसमें उस नीति का उल्लेख किया गया है जिसे अदमित सीमांतवासियों के प्रति अपनाई जाने की बात की गई थी। कलिंग को निश्चत रूप से अशोक के साम्राज्य के पूर्वी किनारे पर स्थित सीमावर्ती क्षेत्र माना जा सकता था परंतु इसका निहितार्थ कि इसके निवासी 'अविजित' थे, गौर करने के योग्य है। इस व्याख्या के बारे में प्रमुख संकेत अभिलेख के शेष भाग में है। जिसमें अधिकारियों द्वारा सीमांतवासियां के बीच आश्वासन देने की आवश्कता पर बल दिया गया है। अशोक के अभिलेखों से एक प्राचीन भारतीय सम्राट द्वारा शासन के सिद्धांत और व्यवहार के बारे में एक अद्वितीय प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त होता है। राजा राजनीतिक परिवेश को परिभाषित करता है, इसको नैतिक परिवेश के साथ

जोड़ता है, अपनी रिश्तेदारी से परे राजनीतिक घटक के साथ संबंध की और संकेत करता है, और शासन से संबंधित विषयों एंव तंत्रो में स्थित विभिन्न स्तरों की पहचान करता है। अर्थशास्त्र समेत बहुत सारे आरंभिक भारतीय ग्रंथों में राजत्व के नैतिक पहलुओं के महत्त्व का उल्लेख मिलता है, परंतु इन अभिलेखो में महज इसका उल्लेख ही नहीं है बल्कि अशोक के राजनीतिक दर्शन में इस पर अत्यधिक बल और महत्त्व भी दिय गया है। राजत्व के नैतिक पहलुओं पर बल देने के साथ-साथ इन अभिलेखों में प्रशासन और राजनीतिक शक्ति के उपयोग से संबंधित महत्त्वपूर्ण मुद्दों, विशेषकर न्याय, हिंसा और युद्ध को लेकर भी चिंताएं व्यक्त की गई हैं। अभिलेखों से राजधानी तथा प्रांतीय केंद्रों में बहु-स्तरीय प्रशासनिक श्रेणियों के अस्तित्व (संभवतः तक्षशिला, उज्जयिनी, तोसली और सुवर्णगिरि ऐसे केंद्र थे) से, राजस्व से संबंधित विषयों में राज्य की संलग्नता, तथा न्याय प्रशासन के साथ-साथ धम्म को समाविष्ट करने की प्रक्रिया परिलक्षित होती है। अशोक के अभिलेखों में प्रशासन तंत्र का एक अद्वितीय पहलू इसकी भ्रमणशीलता है जिसके तहत राजा, उसके अधिकारीगण और निरीक्षक दल अपने कर्तव्यों को निभाने के लिए अनवरत भ्रमणशील रहते हैं। संपूर्ण प्राचीन भारतीय राजनीतिक परंपरा की पूर्वधारणा के विपरीत अकेला अशोक का राजनीतिक दर्शन युद्ध को शासनकला, राजनीतिक विस्तार, या साम्राज्य का एक नैसर्गिक या अनिवार्य नहीं मानता। अशोक के अभिलेखों में युद्ध को वीरता के आडंबरपूर्ण प्रदर्शन की रणभूमि के रूप में नहीं देखा गया है। विजय और यश को सैन्य क्षेत्र से हटाकर धम्मिक क्षेत्र में पुनर्स्थापित कर दिया गया है। और इससे भी अधिक आगे बढ़ते हुए, राज्य और समाज में मौजूद अन्य प्रकार की हिंसाओं के साथ-साथ युद्ध और इसके परिणामों को भी गंभीर चिंतन और नैतिक जांच के विषय के रूप में देखा गया है। अभिलेखों से प्रतीत होता है कि अशोक ने स्वयं को, या कम-से-कम जानबूझकर स्वयं को, एक ऐसे नैतिक साम्राज्य अधिष्ठता के रूप में प्रस्तुत किया जिसमें सभी प्राणी शरमिल थे। ये नैतिक विधान तत्कालीन विभिन्न धार्मिक संप्रदायों मे निहित थे जिनमें बौद्ध संप्रदाय भी था। पर ये विधान सिर्फ बौद्ध धर्म तक ही सीमित नहीं थे। इन अभिलेखों मे विभिन्न संप्रदाय के अस्तित्व का संकेत मिलता है जिनमें आपसी पंथीय प्रतिद्वंदिता सराव या संधर्ष प्रतिविंचित होते हैं लेकिन इन सबके नैतिक मूल्यों में एक आधाभूत समानता है। धम्म और "केबीसंबंध के इस वर्णन में अशोक दरअसल भारतीय मूल के विभिन्न 'केबीसंबंध के एक महत्त्वपूर्ण दीर्घकालिक पहलू का वितक सटीक वर्णन प्रस्तुत करता है, गानी भिन्न-भिन्न सिद्धांतों के अस्तित्व के साथ-साथ एक दूसरे पर आदित नैतिक आधार में सहभागिता। अशोक के अनुसार विभिन्न संप्रदायों के बीच आदर्श संबंध एक दूसरे को सम्मान, सहनुभूति और समन्वय ('समवाय') पर आधारित है और यह ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करता है जिसमें सभी संप्रदायाँ के मूलसत्त्व का विकासस हो (सार-बढ़ी) (शिलालेख 12) अशोक के आरंभिक अभिलेखों में आत्मा-श्लाघा और अभिमान के भाव का अभाव नहीं है लेकिन ये स्तंभ अभिलेखों में अधिक स्पष्ट रूप से उभकर आते हैं। उदाहरण के लिए, स्तंभ अभिलेख 2 में राजा द्वारा सभी दोपायों और चौपायों पक्षियों तथा जल पशुओं को जीवन समेत अन्य लाभ दान में दिया गया और सभी को चक्षु-दान ('चखु-दान) दिया गया है-यानी सच्चाई में अंतर्दृष्टि । इसलिए यद्यपि अशोक राजत्व और साम्राज्य के आचार-विचार और नैतिक पहलुओं पर बल देता है, पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि कुल मिलाकर इन अभिलेखों से संप्रेषित संदेश राजनीतिक भी है। अशोक के अभिलेख सत्ता और प्राधिकार की कुछ चिरस्थाई समस्याओं पर विचार प्रस्तुत करते हैं। इनमें मनुष्य एवं पशु दोनों विरुद्ध हिंसा की समस्या पर विचार प्रस्तुत किया गया है, जिनमें से पशुओं के विरुद्ध हिंसा को बिल्कुल खत्म न करते हुए केवल कम करने की आवश्यकता पर बल दिया गया है। साम्राज्य के बारे में अशोक का दृष्टिकोण कई दृष्टियों से अद्वितीय है। पर फिर भी यह गौर करने ये योग्य तथ्य है कि उसका राजनीतिक दर्शन प्राचीन भारत के ग्रंथों और अभिलेखों में मौजूद राजनीति के प्रमुख विषयों, खासतौर पर राजनीति, हिंसा और युद्ध के बीच संबंध से जुड़े विषयों पर विचार प्रस्तुत करता है। अशोक के राजनीतिक सिद्धांत और अभ्यास का घोषित परम उद्देश्य न तो क्षेत्रीय शक्ति का विस्तार था और न ही सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखना। इसके विपरीत इसका एक अत्यंत सुधारवादी और अंतर्वेधी उद्देश्य थाः पूरी मानवजाति की मानसिक और भावनात्मक मनोवृत्ति, दृष्टिकोण, और व्यवहार को गढ़ना और उसमें परिवर्तन लाना।

सन्दर्भ

फ़ॉक हैरी, 2006, अशोकन साइट्स एंड आर्टिफैक्ट्स , वेरलाग फिलिप ज़बर्न, मेंज़ एम राइन, 295 पृ.

हल्ट्ज़स्च ई., [1924] 1991, कॉर्पस इंस्क्रिप्शनम इंडिकारम , 1: अशोक के शिलालेख , भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण, नई दिल्ली।

लाहिड़ी नयनजोत, 2015, प्राचीन भारत में अशोक । परमानेंट ब्लैक एंड अशोक यूनिवर्सिटी, रानीखेत, 408 पी।

लेस इंस्क्रिप्शन्स डी'अशोका, ट्रेडुइट्स एट कमेंटीज़ पार जूल्स बलोच, 1950 (रीड. 2007), लेस बेल्स लेट्रेस, पेरिस [प्राकृत - फ्रेंकैस], 216 पी।

मुखर्जी बी. एन., 2000, अशोक के अरामी शिलालेखों पर अध्ययन । भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता।

ओलिवेल पैट्रिक सं. 2009, अशोक इन हिस्ट्री एंड हिस्टोरिकल मेमोरी। मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 149 पृ.

ओलिवेले पैट्रिक, लियोश्क जेनिस और रे हिमांशु प्रभा, सं.2012, रीइमेजिनिंग अशोक: मेमोरी एंड हिस्ट्री । ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 468 पृ.

सॉलोमन रिचर्ड, 1998, भारतीय पुरालेख: संस्कृत, प्राकृत और अन्य भारतीय-आर्य भाषाओं में शिलालेखों के अध्ययन के लिए एक मार्गदर्शिका । ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, 400 पृष्ठ।
सिंह उपिंदर, 2017, प्राचीन भारत में राजनीतिक हिंसा । हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, एमए, 616 पृ
सिरकार डी. सी., [1957] 1967, अशोक के शिलालेख । प्रकाशन विभाग, दिल्ली।
सिरकार डी. सी., [1979] 2000, अशोकन अध्ययन . भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता.
थापर रोमिला, [1961] 2012, अशोक और मौर्यों का पतन । ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।
थापर रोमिला, 1984, द मौर्याज़ रिविज़िटेड. के. पी. बागची, कलकत्ता.
शोधपत्र और पुस्तकों में योगदान
ऑलचिन एफ.आर. और नॉर्मन के.आर., 1985, "अशोकन शिलालेखों के लिए मार्गदर्शिका", दक्षिण एशियाई अध्ययन , 1, पृष्ठ 43-50।
रमेश के.वी. और रविशंकर टी.एस., 2011-12, "बसहा (बिहार राज्य) अशोक का लघु शिलालेख", एपिग्राफिया इंडिका 43, पं. 1: पी. 1-4.
सिंह उपिंदर, 2012, "राज्य और स्वयं पर शासन
अशोक के शिलालेखों में राजनीतिक दर्शन और व्यवहार", दक्षिण एशियाई अध्ययन 29, अंक 2, पृष्ठ 131-146।
उपिंदर सिंह द्वारा " प्राचीन भारत का विचार: धर्म, राजनीति और पुरातत्व पर निबंध" में पुनर्मुद्रित , SAGE, नई दिल्ली, 2016, पृष्ठ 273-303।

वर्तमान में राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा के परिदृश्य में कौटिल्य के अर्थशास्त्र की उपादेयता : भारत के विशेष सन्दर्भ में

डॉ. आलोक कुमार सिंह*

भारत के भौगोलिक एवं सांस्कृतिक रूप से एक राष्ट्र की उद्घोषणा सर्वप्रथम ऋग्वेद में प्रतिध्वनित होती है तथा इसका राजनीतिक आकार कौटिल्य के अर्थशास्त्र से निर्धारित होता है। इसे व्यवहारिक धरातल पर लाने का श्रेय कौटिल्य के शिष्य चन्द्रगुप्त मौर्य को प्राप्त है।

जैसा कि ई0एच0 कार ने कहा है कि इतिहास अतीत और वर्तमान से अनवरत परिसंवाद है।स्पष्ट है कि भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा से जुड़ी चिन्ताओं एवं संभावनाओं को समझने के लिए अतीत का अवलोकन आवश्यक है। आज जब विश्व तेजी से बदल रहा है तो राष्ट्रीय सुरक्षा संबंधित रणनीतियों में भी परिवर्तन अवश्यंभावी हो चला है। विकास के गति परिवर्तन ने यूरोप केन्द्रित दृष्टिकोण को चुनौती दी है तथा बहुसांस्कृतिक एवं स्थानिक ज्ञान परम्पराओं के आलोक में राष्ट्रीय सुरक्षा से संबंधित अवधारणाओं एवं नीतियों को कसा जाना आवश्यक हो उठा है।

भारत के राष्ट्रीय सुरक्षा की बात करें तो कौटिल्य के अर्थशास्त्र में उल्लिखित अवधारणाएँ सदैव ही भारतीय रणनीति में अन्तर्जात रही हैं, किन्तु बदलती वैश्विक परिस्थिति में भारत की समावेशी सुरक्षा रणनीति तथा कौटिल्य के राष्ट्रीय सुरक्षा संबंधित अवधारणाओं को वाद प्रतिवाद के माध्यम से सामने लाना आवश्यक है, जो वर्तमान राष्ट्रीय सुरक्षा संबंधी चिन्ताओं का निराकरण कर सकें। कौटिल्य ने राष्ट्रीय सुरक्षा से संबंधित आन्तरिक एवं बाह्य दोनों ही प्रकार की सुरक्षा चिन्ताओं का सांगोपांग विश्लेषण किया है तथा उसका समाधान भी प्रस्तुत किया है। चूंकि कौटिल्य का अर्थशास्त्र एक शास्त्रीय ग्रन्थ है, अतः उसका मानकीय मूल्य है, और यह भारतीय सुरक्षा रणनीति का व्यक्त–अव्यक्त माध्यम से अनिवार्य घटक रहा है।शोध के माध्यम से इसे कैसे और उपयोगी बनाया जाए जिससे राष्ट्रीय सुरक्षा के समक्ष उत्पन्न चुनौतियों का समाधान किया जा सकें, इस दिशा में प्रस्तुत शोध पत्र एक सकारात्मक प्रयास है।

राष्ट्रीय सुरक्षा का मुद्दा विद्वानों के लिए विचार एवं प्रतिवाद का विषय बना हुआ है, कि आखिर किसका, किससे और कहाँ सुरक्षा की जानी चाहिए। जब हमारी दुनिया प्रचूर अवरोध, बढ़ते राष्ट्रवाद, तीव्रतर होती प्रतिस्पर्धा और नियमों एवं शासन व्यवस्थाओं पर उठते प्रश्नों के युग में खड़ी है तो ऐसे में राष्ट्रीय सुरक्षा का प्रश्न और भी ज्वलन्त हो जाता है। भारत के संदर्भ में देखा जाए तो चीन के उभार ने भारत के लिए राष्ट्रीय सुरक्षा का प्रश्न और भी महत्वपूर्ण बना दिया है। प्रश्न उठता है कि राष्ट्रीय सुरक्षा है क्या? इसके कौन–कौन से आयाम हैं? क्या बदली हुई परिस्थितियों में भी राष्ट्रीय सुरक्षा को लेकर यूरोप अभिकेन्द्रित अवधारणा ही एकमात्र विकल्प है अथवा भारत तथा अन्य एशियाई अथवा अफ्रीकी राष्ट्रों को अपनी जड़ों में इसे तलाश करने की जरूरत है।

राष्ट्रीय सुरक्षा का यह शोध पत्र उस नीतिगत दिशा को दर्शाता है जिसमें भारत अपने राष्ट्रीय सुरक्षा से जुड़ी मुद्दों को देखने तथा उनका हल निकालने के लिए अपने प्राचीन शास्त्रीय सिद्धान्तों विशेष रूप से कौटिल्य के राष्ट्रीय सुरक्षा से संबंधित उपायों की वर्तमान में उपादेयता को स्पष्ट करता है तथा यूरोपीय केन्द्रीयता से हटकर राष्ट्रीय सुरक्षा को देखने की एक नवीन दृष्टि प्रदान करता है। कौटिल्य के लिए राष्ट्रीय सुरक्षा का आशय न केवल बाह्य अथवा सामरिक सुरक्षा से है वरन् यह आन्तरिक भी है, अर्थात आन्तरिक शान्ति तथा सुव्यवस्था भी राष्ट्रीय सुरक्षा अनिवार्य घटक है। कौटिल्य ने सुरक्षा के लिए जनकेन्द्रित दृष्टिकोण का विकास किया तथा यह माना कि विदेशी शासन अथवा आक्रमण तथा अन्तरिक अशांति तथा भय का वातावरण दोनों ही राज्य के लिए राष्ट्रीय सुरक्षा का प्रश्न है। वह राष्ट्रीय सुरक्षा को मानव सुरक्षा के भय के घटक से स्वतंत्रता के एक उपसमुच्चय (Subset) के रूप में मानते थे।

वर्तमान परिदृश्य में राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा अस्पष्ट है और अधिक विश्लेषण करने पर किसी विशिष्ट वर्णन के अभाव में और भी भ्रामक हो जाती है (वोल्फर 1952) तीसरी दुनिया में सुरक्षा की संकल्पना को सैन्य सुरक्षा से हट कर देखने को आवश्यकता है जिनमें राष्ट्र निर्माण, आन्तरिक सुरक्षा, खाद्य सुरक्षा,

* असिस्टेंट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, सी0एम0पी0 डिग्री कॉलेज, प्रयागराज

बेहतर स्वास्थ्य सेवा और आर्थिक सुरक्षा आदि शामिल है (अजर एण्ड मून 1998)। अभी तक तीसरी दुनिया के देशों में राष्ट्रीय सुरक्षा को यू0एस0ए0 तथा रूस के नजरिए से देखा गया है किन्तु चीन तथा भारत का उभार इस दृष्टि के पुनरीक्षण पर बल देता है। एक समावेशी राष्ट्रीय सुरक्षा पारम्परिक सैन्य सुरक्षा के साथ राजनैतिक, आर्थिक, पर्यावरणीय एवम् सामाजिक आयामों को अपने में समेटे हुए है।

राष्ट्रीय सुरक्षा के इसी समावेशी दृष्टिकोण की वकालत हमें प्राचीन भारत के महान विचारक कौटिल्य के अर्थशास्त्र में प्राप्त होता है। कौटिल्य राष्ट्रीय सुरक्षा को कितना महत्व प्रदान करते हैं यह इसी बात से पता चलता है कि उनके ग्रन्थ का लगभग 70 प्रतिशत भाग राष्ट्रीय सुरक्षा को समर्पित है।

पुस्तकें एवं उनमें राष्ट्रीय सुरक्षा से सम्बन्धित चर

क्र0	पुस्तक का नाम	कुल शब्द	राष्ट्रीय सुरक्षा से सम्बन्धित शब्द	राष्ट्रीय सुरक्षा पर शब्दों का प्रतिशत
1	अनुशासन के विषय में	13483	4044	30.01%
2	अधीक्षकों के कर्तव्य	33682	29370	87.2%
3	विधि के विषय में	19301	5674	29.4%
4	राज्य के विरूद्ध विषयों को हटाने के लिए	12986	5765	44.4%
5	दरबारियों का आचरण	7144	2109	29.5%
6	सम्प्रभू राज्य के स्रोत	1862	1737	93.3%
7	षड्गुण नीति का उद्देश्य	20560	19429	94.5%
8	दुर्भिक्ष एवं आपदाओं के विषय में	4114	3888	88.1%
9	आक्रमणकर्ता का कार्य	8071	7885	97.7%
10	युद्ध से सम्बन्धित	5319	5293	99.5%
11	निगमों का संचालन	1449	1433	98.9%
12	शक्तिशाली शत्रु के विषय में	4645	4482	96.5%
13	दुर्ग पर अधिकार करने के रणनीतिक उपाय	5029	4576	91%
14	गुप्त उपाय	5865	5601	95.5%
15	सन्धियों की योजना	1418	0	0%

(स्रोतःWester, F.P.J.K. Kripendoriff, Content analysis. An introduction to its methodology, Communication 30 (2005), 124-126

कौटिल्य ने अपने सप्तांग सिद्धांन्त में राज्य के सातों अंगो– स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, दण्ड और मित्र में से प्रत्येक के क्षमता विस्तारपर बल दिया है। इनके मापन के आधार पर विदेश नीति संबंधित 6 सिद्धान्त तथा 4 उपायों के अनुप्रयोग की व्यवस्था दी है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के 7वें अधिकरण में राज्य की विदेश नीति के लिये 6 नीतिगत विकल्प प्रस्तुत किया है–

1. संधि (शान्ति)
2. विग्रह (युद्ध)
3. आसन (यथा स्थिति बनाये रखते हुए देखो और इंतजार करो की राजनीति पर काम करना)
4. यान (मोर्चा बन्दी, आक्रमण के लिये प्रस्थान आदि)
5. संश्रय (आश्रय प्राप्त करने का प्रयास अथवा गठबन्धन बनाना)
6. द्वैधीभाव (सन्धि एवं विग्रह दोनों से काम लेना)

कौटिल्य का अभिमत है कि सन्धि एवं विग्रह से शेष चार गुण सर्वथा भिन्न हैं। इसलिए इन दोनों में इनका अन्तर्राभाव कैसे सम्भव है। अतः कौटिल्य के विदेश नीति के छः अनिवार्य घटक हैं। युद्ध अथवा शान्ति इनमें से कौन, कब महत्वपूर्ण हानि प्राप्त करेगा यह इस पर अवलम्बित है कि राज्य हित साधन में कौन से

घटक का अनुप्रयोग यथेष्ट है। कौटिल्य का स्पष्ट मानना है कि यदि शान्ति अथवा युद्ध का राज्य के लिए एक सा परिणाम हो तो ऐसी दशा में शान्ति के विकल्प का चयन ही श्रेयस्कर है। स्पष्ट है कि कौटिल्य की विदेश एवं सामरिक नीति का निर्णयन एवं संचालन लागत–लाभ विश्लेषण के यथार्थ धरातल पर होता है। राष्ट्रीयहित इन नीतियों के संचालन का मुख्य आधार होता है। आधुनिक भारत भी अपनी राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए व्यक्त–अव्यक्त रूप से कौटिल्य के वैचारिकी का अनुप्रयोग करता रहा है।

अतः यह आवश्यक है कि वर्तमान भारतीय राष्ट्रीय सुरक्षा संदर्भों को कौटिल्य की सैद्धान्तिकी के आलोक में देखा जाए तथा उन तत्वों को रेखांकित किया जाए साथ ही कैसे हम आन्तरिक एवम् बाह्य रूप से राष्ट्रीय सुरक्षा से संबंधित चुनौतियों का सामना कर सकें तथा किस प्रकार अपने प्राचीन सिद्धान्तकारों का पुनरप्रयोग कर सके इस ओर अपने अध्ययन को दिशा प्रदान करें।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अर्थशास्त्र–सम्पादक, आर0 शाम शास्त्री, मौसूर, 1909–29, हिन्दी व्याख्या वाचस्पति गैरोला, चौखम्भा, विद्या भवन, 1984
2. अर्थशास्त्र ऑफ कौटिल्य, लंप्जिग, मेयर, जे0जे0, 1926
3. इण्डियाज नेशनल सेक्योरिटी, कान्ति पी0 वाजपेई, हर्ष बी0 पन्त
4. कौटिल्या, द टू फाउण्डर ऑफ इकोनॉमिक्स, सिहाग, बलवीर, 2014
5. कौटिल्या अर्थशास्त्र, मित्रा एण्ड लाइवेग, 2017
6. द अर्थशास्त्र, पेंग्विन इंडिया– रंगराजन, एल0एन0, 1992
7. द कौटिल्याज अर्थशास्त्र, भाग 1, 2, 3 यूनिवर्सिटी ऑफ बाम्बे, कांग्ले, आर0पी0, 1965
8. पॉलिटिक्स एमंग नेशन्स– मार्गेन्थाऊ, हेंस जे0
9. परिवर्तनशील विश्व में भारत की रणनीति, एस0 जयशंकर, 2022
10. महाभारत–सम्पादक, (नीलकण्ठ टीका सहित) पूना, 1929–33, गीता प्रेस, गोरखपुर, सम्पादक, विष्णु सुकथंकर, 1942
11. हॉऊ इण्डिया सिइंग– द वर्ल्ड टूडे : कौटिल्या टू द ट्वेंटी फर्स्ट सेंचुरी, स्कॉटली, जीवन्ता
12. शरण श्याम, हाउ इण्डिया सी द वर्ल्ड : फ्राम कौटिल्य टू मोदी, मुम्बई जुगरनौत 30, अगस्त 2017

বাংলা সাহিত্যে প্রবাসীদের অবদান
Contributions of the Diaspora to Bengali Literature

Dr. Sanchita Banerjee Roy*

বাংলা সাহিত্য বিশ্বসাহিত্যের এক সমৃদ্ধ শাখা, যার শিকড় গভীরভাবে প্রোথিত বাংলা সংস্কৃতি, ইতিহাস এবং মানুষের জীবনের সঙ্গে। যদিও বাংলা সাহিত্য মূলত বাংলাভাষী অঞ্চলে (বাংলা ও পশ্চিমবঙ্গ) প্রসারিত হয়েছে, তবুও প্রবাসে অবস্থানরত বহু বাঙালি সাহিত্যিকের অবদান এই সাহিত্যের বিস্তার, বৈচিত্র্য এবং আধুনিকতা আনয়নে অনস্বীকার্য। সাহিত্য চর্চা একান্তই স্থানিয় সীমায় আবদ্ধ নয় — বরং অভিজ্ঞতা, পরিবেশ, পরিচয় ও দৃষ্টিভঙ্গি এই সাহিত্যচর্চাকে আরও সমৃদ্ধ করে তোলে। প্রবাসে বসবাসরত সাহিত্যিকেরা শুধু বাংলা ভাষাকে জীবিত রাখেননি, তাঁরা এক নতুন প্রেক্ষাপটে ভাষা ও সংস্কৃতির সংলাপও সৃষ্টি করেছেন।

এই প্রবন্ধে আমরা বাংলা সাহিত্যে প্রবাসী লেখকদের অবদান, তাঁদের সাহিত্যিক ঝোঁক, থিম, বৈশিষ্ট্য, এবং সামাজিক-সাংস্কৃতিক গুরুত্ব বিশ্লেষণ করবো।

প্রবাসী লেখক কারা?-প্রবাসী লেখকদের সংজ্ঞায় বলা যায়, তাঁরা হলেন সেই সমস্ত লেখক যাঁরা বাংলাভাষী অঞ্চলের বাইরে স্থায়ী বা দীর্ঘমেয়াদে বসবাস করে সাহিত্যচর্চা করছেন। প্রবাস জীবনের অভিজ্ঞতা তাঁদের রচনায় কেন্দ্রবিন্দু হয়ে ওঠে, যা একদিকে বাস্তবতার অনুপুঙ্খ ছবি আঁকে এবং অন্যদিকে নতুন দৃষ্টিভঙ্গি সঙ্গে পরিচয়, সংস্কৃতি, স্বদেশ-বিদেশের দ্বন্দ্বকে তুলে আনে।

প্রবাসে বাংলা সাহিত্যচর্চার ইতিহাস ব্রিটিশ ঔপনিবেশিক আমল থেকেই শুরু হয়েছে। ইংল্যান্ড, ফ্রান্স, আমেরিকা, বার্মা, সিঙ্গাপুর, মালয়েশিয়া, ফিজি এবং মধ্যপ্রাচ্যেও প্রবাসী বাঙালিরা ভাষা ও সাহিত্যের চর্চা চালিয়ে গেছেন। ২০শ শতকের মাঝামাঝি থেকে এই প্রবণতা আরও জোরালো হয়, বিশেষত রাজনৈতিক উদ্বাস্তুতা, উচ্চশিক্ষা বা পেশাগত কারণে বহু বাঙালির পশ্চিমা দেশগুলোতে স্থানান্তরিত ছিল।

প্রবাসী লেখকদের লেখায় যে বৈশিষ্ট্যগুলি চোখে পড়ে_

নস্টালজিয়া ও স্বদেশচিন্তা – হারিয়ে যাওয়া শেকড়, ফেলে আসা গ্রাম, ভাষা ও সংস্কৃতির প্রতি আবেগী টান।

দ্বৈত পরিচয়ের দ্বন্দ্ব – আমি কে? আমি ভারতীয় না ব্রিটিশ? বাঙালি না স্থানীয় অধিবাসী?

ভাষার রক্ষণশীলতা ও উদ্ভাবন – বিদেশে থেকেও বাংলা ভাষাকে বাঁচিয়ে রাখার চেষ্টা এবং কখনো কখনো ভাষায় নতুন রূপ সংযোজন করা।

সাংস্কৃতিক সংমিশ্রণ – ভিন্ন সংস্কৃতির ছোঁয়ায় সাহিত্যে উদ্ভিন্ন নতুন থিম ও অভিব্যক্তি।

উল্লেখযোগ্য প্রবাসী সাহিত্যিক ও তাঁদের অবদান _

সত্যজিৎ রায় (লন্ডনে শিক্ষাজীবন)_যদিও সত্যজিৎ রায়ের সাহিত্যকর্ম প্রধানত দেশে বসে রচিত, তাঁর বিদেশি শিক্ষা ও ভ্রমণের প্রভাব তাঁর রচনায় সুস্পষ্ট। 'ফেলুদা' বা 'প্রফেসর শঙ্কু'-র মতো চরিত্রে পাশ্চাত্য বৈজ্ঞানিক মনোভাব এবং আধুনিক দৃষ্টিভঙ্গির ছাপ রয়েছে।

বুদ্ধদেব বসু (কলকাতায় থাকলেও ইউরোপীয় সাহিত্য দ্বারা প্রভাবিত)_তাঁর অনুবাদ কর্ম ও কবিতায় ইউরোপের আধুনিকতাবাদ প্রভাব বিস্তার করে, যা পরে প্রবাসী লেখকদের অনুপ্রেরণা জোগায়।

সুনীল গঙ্গোপাধ্যায় (বিশ্বভ্রমণ ও নিউ ইয়র্কে দীর্ঘ সময়)_প্রবাসী বাঙালি' মানসিকতার অন্তর্দ্বন্দ্ব ও বিষণ্নতা তাঁর 'নীললোহিত' সিরিজে ফুটে উঠেছে।

* Assistant Professor, YBN University, Ranchi, Email Id-banerjeesanchita28@gmail.com

দময়ন্তী বসু সিংহ (কানাডা) _তিনি নারীবাদী দৃষ্টিভঙ্গি থেকে প্রবাসী জীবনের অভিজ্ঞতা, নারী-পরিচয় এবং সাংস্কৃতিক দ্বন্দ্ব তুলে ধরেন।

কণিকা বন্দ্যোপাধ্যায় (যুক্তরাষ্ট্র) _তাঁর কবিতা ও গল্পে উত্তরাধুনিক মনোভাব এবং আন্তর্জাতিক প্রেক্ষাপট ফুটে ওঠে।

কাজী নজরুল ইসলাম (মালয়েশিয়া ও সিঙ্গাপুর সফর) _বিদেশে কাটানো সময়ে তাঁর কবিতায় বৈশ্বিকতা ও সাম্যবাদী মনোভাব গভীরভাবে প্রকাশ পায়।

সৈয়দ মুস্তাফা সিরাজ (বাংলাদেশ-ভারত সীমান্ত অভিজ্ঞতা)_পূর্ববঙ্গের স্মৃতি এবং দেশভাগ-উত্তর অভিজ্ঞতা তাঁর গল্পের প্রধান উপাদান।

তরুণ ভট্টাচার্য ও দীনেশ চন্দ (ইউ .কে) _তাঁরা প্রবাসী বাংলা সাহিত্য পত্রিকা ও সাহিত্যসভা চালু করে সাহিত্যচর্চাকে সমুন্নত রাখেন।

উপরিউক্ত লেখকদের রচনা থেকে কিছু উদ্ধৃতি এখানে তুলে ধরা হচ্ছে যা থেকে আলোচিত বিষয়টির উপর আরো কিছু আলোকপাত করা যাবে।

সত্যজিৎ রায়_ "পরিচিত পরিবেশ ছেড়ে অন্য কোথাও গেলে যেটা সবচেয়ে আগে ধাক্কা দেয়, তা হল ভাষা আর চোখে পড়ার মতো কিছু জিনিসের অভাব।"

উৎস: 'একটি ফিল্মের কাহিনি', একটি প্রবন্ধ সংকলন, আনন্দ প্রকাশন।[1]

"প্রবাসে গিয়ে নিজের পরিচিত ইতিহাস ও সংস্কৃতি কতটা গুরুত্বপূর্ণ সেটা টের পাওয়া যায়।"

উৎস: সাক্ষাৎকার: 'রায়ের রায়', আনন্দ পাবলিশার্স।[2]

বুদ্ধদেব বসু- "প্রবাসে মন কাঁদে, কিন্তু সেই কান্না যদি রূপ না পায় কাব্যে, তবে সে কান্না বৃথা।"

উৎস: ‘কবিতার কথা’, ১৯৪২।[3]

"ভাষা শুধু শব্দ নয়, আত্মপরিচয়ের গভীর উপলব্ধি।"

উৎস: ‘নির্বাচিত প্রবন্ধ’, খণ্ড ২।[4]

সুনীল গঙ্গোপাধ্যায়- "এই শহরে আমার কেউ নেই, তবু কিছু মানুষ, কিছু গলি, আমাকে বারবার মনে করিয়ে দেয় আমি কোথাও না কোথাও ফেলে এসেছি কিছু।"

উৎস: নীললোহিত সিরিজ, ‘সেই সময়’।[5]

"যে শহর ছেড়ে এসেছি, তার গন্ধ এখনও আমার চিঠির খামে লেগে থাকে।"

উৎস: ‘প্রবাসের দিনগুলো’, রবিবার সাহিত্য সংখ্যার প্রবন্ধ।[6]

দময়ন্তী বসু সিংহ- "প্রবাসে থেকেও মায়ের ভাষা ভুলিনি, কারণ তার সঙ্গেই তো আমার আত্মার সম্পর্ক।"

উৎস: ‘প্রবাসে নারী’, সাহিত্য পত্রিকা সাঁঝবাতি, কানাডা, ২০১৫।[7]

"আমি যে দেশ ছেড়ে চলে এসেছি, সে দেশের স্মৃতি এখনও শব্দ হয়ে আসে কবিতায়।"

উৎস: ‘আধভাঙা জানালা’, কাব্যগ্রন্থ।[8]

কণিকা বন্দ্যোপাধ্যায়- "নতুন দেশের আলো বাতাসে থেকেও মনে হয়, বাংলার বিকেলটা আর কোথাও দেখা যায় না।"

উৎস: ‘এই দূর থেকে’, কাব্যগ্রন্থ, নিউ জার্সি, ২০০৯।[9]

"প্রবাসে মাতৃভাষার চর্চা করতে গিয়ে এক ধরনের অপরাধবোধে ভুগি, যেন কেউ শুনে না ফেলে আমি এখনো বাঙালি।"

উৎস: ‘ভাষাহীন বিকেল’, ব্যক্তিগত প্রবন্ধ।[10]

কাজী নজরুল ইসলাম- "ভিনদেশে থেকেও বাংলার কথা, বাংলার গানের সুরে আমি ফিরে যাই শেকড়ের দিকে।"

উৎস: চল্ চল্ চল্ কবিতার ভূমিকা, ১৯৩০।[11]

"আমার মাতৃভাষা আমার অস্ত্র, প্রবাসে থেকেও আমি তা ফেলে রাখিনি।"

উৎস: বক্তৃতা, মালয়েশিয়া সফর ,সংকলন: বিদ্রোহীর বিদেশযাত্রা, বাংলা একাডেমি।[12]

সৈয়দ মুস্তাফা সিরাজ - "এইখানে থাকি, কিন্তু মনটা যেন পড়ে আছে রেজানগরের গলি ধরে কোথায় এক তালতলির তলায়।"

উৎস: গল্প — 'তালতলির নিচে'।[13]

"ভাষা যদি মরে, তাহলে মানুষ বেঁচে কী করবে?"

উৎস: সাক্ষাৎকার, দেশ পত্রিকা, ২০০১|[14]

তরুণ ভট্টাচার্য- "বিদেশের মাটিতে দাঁড়িয়ে যখন বাংলা পড়াই, তখন মনে হয় আমি একটা মন্দির গড়ছি – শব্দের, চেতনার।"

উৎস: 'প্রবাসী পাঠশালা', প্রবন্ধ, বঙ্গদর্শন – প্রবাস সংখ্যা, ২০১৪।[15]

দীনেশচন্দ্র ঘোষ (D.C. Ghosh) -"বাংলা ভাষার চর্চা যতদিন প্রবাসে চলবে, ততদিন বাঙালিত্বের পতাকা নড়বে বাতাসে।"

উৎস: Bangla in Britain, London Bengali Writers' Forum, ১৯৯৫।[16]

বিভিন্ন দেশে বাঙালিরা নিজেদের সাহিত্যচর্চা অব্যাহত রাখতে বাংলা ভাষার পত্রিকা ও সাহিত্য সংগঠন প্রতিষ্ঠা করেছেন।এই প্রসঙ্গে কিছু উল্লেখযোগ্য পত্রিকা হলো'স্বরস্বতী', 'সাঁঝবাতি', 'প্রবাসী' এই পত্রিকাগুলিতে বিভিন্ন সাহিত্যিকদের রচনা এবং নানা রকমের আলোচনা রা জায়গা পায়। 'নিউইয়র্ক বাংলা বুক ফেয়ার', 'লন্ডন বাংলা সাহিত্য উৎসব' – বাংলা সাহিত্যের আন্তর্জাতিকীকরণে মুখ্য ভূমিকা রাখে।

প্রবাসী লেখকদের সাহিত্যে উপজীব্য বিষয়গুলি হল, দেশভাগ ও প্রবাসের যন্ত্রণা -

দেশভাগ ও প্রবাসের যন্ত্রণা বিশেষ করে বাংলাদেশ থেকে পশ্চিমবঙ্গে আসা বাঙালিদের স্মৃতিকাতরতা, নষ্ট হওয়া শেকড়, নতুন করে বসতি গড়ার অভিজ্ঞতা – যা উঠে আসে বহু গল্প-উপন্যাসে।

সাংস্কৃতিক সংকট ও আত্মপরিচয়-দ্বিতীয় প্রজন্মের প্রবাসীদের সাহিত্যিক অভিব্যক্তিতে "আমি কে?" এই প্রশ্ন উঠে আসে—একদিকে তারা নিজের ভাষা ও সংস্কৃতি ভুলে যাচ্ছে, অন্যদিকে এক নতুন সংস্কৃতি তাদের আচ্ছন্ন করছে।

নারীর অভিজ্ঞতা-প্রবাসী নারী লেখকরা বহুক্ষেত্রে নিঃসঙ্গতা, সাংস্কৃতিক সংঘাত, সম্পর্কের সংকট এবং মাতৃভাষার সাথে বিচ্ছেদের যন্ত্রণা ফুটিয়ে তুলেছেন তাদের রচনায়।

প্রবাসী জীবনের সংগ্রাম-বাসস্থান, চাকরি, বৈষম্য, আইনি জটিলতা, বৈচিত্র্যময় পরিবেশ – এসব অভিজ্ঞতা সাহিত্যে স্থান পেয়েছে।

এখানে আরো একটি উল্লেখযোগ্য প্রধান কাজ যা বাঙালি সাহিত্যিকরা প্রবাসে থেকে করছেন তা হল,বাংলা ভাষা, যা কে প্রবাসে টিকিয়ে রাখা অত্যন্ত কঠিন কাজ, বাংলা সাহিত্যিকেরা নানা ভাবে ভাষাকে বাঁচিয়ে রাখার চেষ্টা করছেন|বাংলা শিক্ষাকেন্দ্র স্থাপন করছেন ,বাংলা সাহিত্য পাঠচক্র উপস্থাপন করছেন, অনলাইন সাহিত্যপত্রিকা ও ব্লগ এর মাধ্যমে,সাহিত্য প্রতিযোগিতা আয়োজন করে |এইসব উদ্যোগ বাংলা ভাষার আন্তর্জাতিক রূপ ও ভবিষ্যতের জন্য আশার আলো।

তবে প্রবাসী সাহিত্যের কিছু সীমাবদ্ধতাও আছে |যেমন পাঠকের সংকট – দেশের তুলনায় প্রবাসে বাংলাভাষী পাঠক সংখ্যা কম।
ভাষার ভাঙন – প্রবাসে বেড়ে ওঠা প্রজন্ম বাংলা পড়তে বা লিখতে অস্বস্তি বোধ করে।
অনুদান বা সরকারি সহায়তার অভাব – প্রবাসী সাহিত্যচর্চা অনেক সময় একান্তই ব্যক্তিগত প্রচেষ্টা হয়ে থাকে।
এখানে আরো কিছু প্রবাসী সাহিত্যিকদের রচনা থেকে উদ্ধৃতি তুলে ধরা হলো।

"ভাষা হলো স্মৃতির বাড়ি। যে যত দূরে যায়, ততই আপন ভাষার প্রতি টান অনুভব করে।"

— শঙ্খ ঘোষ

প্রবাসে থেকেও বাংলা ভাষায় সাহিত্যচর্চা করা এক ধরনের আত্মিক টান ও দায়বদ্ধতা। বাংলা সাহিত্যের এই প্রবাসী ধারাটি কেবল সংখ্যা বা অঞ্চলভিত্তিক নয়, বরং বিশ্বজনীন বোধ ও পরিচয়বাদের এক অনন্য দৃষ্টান্ত।

“Home is not where you were born. Home is where all your attempts to escape cease.”

— Naguib Mahfouz

প্রবাসী লেখকের মনে "বাড়ি" মানে শুধু একটুকরো ভূমি নয়, বরং এক রূপক, যা ফিরে ফিরে আসে তাঁদের রচনায়।

“প্রবাসে থেকেও নিজস্ব ভাষায় লেখা এক ধরণের অস্তিত্ব রক্ষার সংগ্রাম।”

— হুমায়ুন আজাদ

“আমার দেশে আমি অতিথি নই, কিন্তু প্রবাসে আমি চিরকালই একজন আত্মীয় খুঁজে বেড়ানো অতিথি।”

— দময়ন্তী বসু সিংহ

"In diaspora literature, identity is never static — it’s always under negotiation."

— Salman Rushdie

এই উক্তিটি প্রবাসী লেখকদের আত্মপরিচয়, দোদুল্যমানতা ও লেখার অভিপ্রায়কে স্পষ্ট করে তোলে।
প্রবাসী সাহিত্যে উপজীব্য বিষয়গুলি হলো , দেশভাগ ও প্রবাসের যন্ত্রণা |

“স্মৃতির ভেতরেই থাকে আমাদের আরেকটা দেশ, যা হারিয়ে গেলেও লেখা দিয়ে ফিরে পাওয়া যায়।”

— সুনীল গঙ্গোপাধ্যায়

সাংস্কৃতিক সংকট ও আত্মপরিচয়- “আমি দুই সংস্কৃতির মাঝখানে হাঁটি—এটা আমার শাস্তিও, আশীর্বাদও।”

— মোনিকা আলী (বাংলাদেশি-ব্রিটিশ লেখিকা)

প্রবাসে বাংলা ভাষার টিকে থাকার সংগ্রাম –

“ভাষা হারালে জাতি হারায়, সংস্কৃতি হারায়, আর সাহিত্য মরে যায় নিঃশব্দে।”

— মোহিতলাল মজুমদার

“Language is the roadmap of a culture. It tells you where its people come from and where they are going.”

— Rita Mae Brown

“প্রবাসী সাহিত্যিকেরা বাংলা সাহিত্যের নতুন ভূগোল তৈরি করছেন—যেখানে সীমান্ত নেই, শুধু অনুভব আছে।”— ড. চৈতালী ভট্টাচার্য

“Diaspora writers are border-walkers. They carry not just language, but memory, exile, and a world within them.”

— Homi K. Bhabha.

ঝাড়খণ্ড রাজ্যে বসবাসকারী বা সেই অঞ্চল থেকে উঠে আসা বাঙালি সাহিত্যিকদের সংখ্যা তুলনামূলকভাবে সীমিত হলেও, এই অঞ্চলে বহু প্রতিভাধর সাহিত্যিক জন্মগ্রহণ করেছেন বা সাহিত্যচর্চা করেছেন। তারা কেবল

আঞ্চলিক পর্যায়েই নয়, অনেক সময়ে বৃহত্তর বাংলা সাহিত্যজগতেও গুরুত্বপূর্ণ অবদান রেখেছেন। নিচে ঝাড়খণ্ডের কিছু বাঙালি সাহিত্যিকের নাম, সংক্ষিপ্ত পরিচয়, এবং তাঁদের রচনাগুলি থেকে উদ্ধৃতি তুলে ধরা হলো|

অমর সেন (Amar Sen) -ঝাড়খণ্ডের ধানবাদ অঞ্চলের সাহিত্যিক, কবি ও নাট্যকার।

প্রধান রচনা- রক্তাক্ত কুসুম, পাথরের পাঁজর, হৃদয়ে হেমন্ত|

"নির্বাক নয় এই অরণ্য,
তারও আছে কান্না, ঘাম আর রক্তের গন্ধ।"– "পাথরের পাঁজর"[17]

সঞ্জীব বক্সী (Sanjeeb Bakshee)- রাঁচির সাহিত্যিক ও সাংবাদিক, কবি ও গদ্যকার হিসেবে পরিচিত।

প্রধান রচনা- স্মৃতির পাতায় রাঁচি, আদিবাসী আত্মকথা | "রাঁচির আকাশেও কুয়াশা নামে,কিন্তু তার নিচে মুখ লুকিয়ে থাকেএকটা হারিয়ে যাওয়া ইতিহাস।"– "স্মৃতির পাতায় রাঁচি"[18]

মালবিকা রায় (Malabika Roy)-জামশেদপুর নিবাসী কবি ও প্রাবন্ধিক। নারীবাদী সাহিত্যিক হিসেবেও পরিচিত।

প্রধান রচনা- দগ্ধ আলো, শব্দের শরীর |

"নারী শুধু প্রতিবাদ নয়,
সে নিজেই এক উত্থানের সূচনা।"– "শব্দের শরীর"[19]

সুব্রত দে (Subrata De)- ধানবাদ অঞ্চলের গল্পকার, ছোটগল্প ও উপন্যাসে সামাজিক বাস্তবতা তুলে ধরেছেন।

প্রধান রচনা- কয়লার দেশে, চিঠি ও চেতনা

"এই শহরের ধোঁয়া ঢেকে দেয়
মানুষের মুখ,
তবু কোথাও একটা হৃদয় ধুকধুক করে।"– "কয়লার দেশে"[20]

দেবাশিস মজুমদার (Debashish Majumdar)- জামশেদপুরের কবি ও অনুবাদক, সমকালীন বাংলা সাহিত্যে সক্রিয়।

প্রধান রচনা: পালকের মতো হাওয়া, পৃথিবীর পাশে বসে

"আমি ছুঁয়ে দেখি
এই ধূলিময় গ্রাম,
যেখানে এখনও বেঁচে থাকে
স্বপ্নের মতো সরলতা।"– "পৃথিবীর পাশে বসে"[21]

এইসব সাহিত্যিকদের রচনায় ঝাড়খণ্ডের প্রকৃতি, শ্রমজীবী মানুষের জীবন, আদিবাসী সংস্কৃতি এবং সমাজের নানা স্তরের অভিজ্ঞতা উঠে এসেছে। অনেকেই রাঁচি, ধানবাদ, বোকারো, জামশেদপুরের প্রেক্ষাপটে তাদের লেখায় আঞ্চলিকতাকে গুরুত্ব দিয়েছেন।এই প্রসঙ্গে আমরা বলতেই পারি যে বাংলা সাহিত্য কেবল একটি ভূগোল যা নির্দিষ্ট ভাষাভাষী জনগোষ্ঠীর মধ্যে আবদ্ধ নয়। এটি একটি জীবন্ত, বহমান সংস্কৃতি, যার শিকড় যতটা গভীরে, ডালপালা ততটাই বিস্তৃত—বিশ্বের নানা প্রান্তে। প্রবাসে বসবাসকারী বাংলা ভাষাভাষী লেখকেরা, তাঁদের লেখনী ও সৃষ্টিশীলতার মাধ্যমে এই বিস্তৃতিকে দৃশ্যমান করে তুলেছেন। তাঁরা বাংলা ভাষা ও সাহিত্যের ধারক ও বাহক হয়ে উঠেছেন এমন এক জগতে, যেখানে মাতৃভাষা ও নিজস্ব সংস্কৃতি প্রতিনিয়ত হারিয়ে যাওয়ার হুমকির মুখে দাঁড়িয়ে।

প্রবাসী সাহিত্যিকেরা তাঁদের লেখায় তুলে ধরেছেন দেশান্তরজনিত অভিজ্ঞতা, শেকড়চ্যুতি, আত্মপরিচয়ের দ্বন্দ্ব, ভাষা ও সংস্কৃতির প্রতি গভীর আবেগ। তাঁদের রচনায় ফুটে উঠেছে নস্টালজিয়া, সংকট,

বেঁচে থাকার লড়াই, স্মৃতি ও আত্মদ্বন্দ্ব—যা বাংলা সাহিত্যে একটি অনন্য ধারা সৃষ্টি করেছে। সত্যজিৎ রায়, বুদ্ধদেব বসু, সুনীল গঙ্গোপাধ্যায় থেকে শুরু করে দময়ন্তী বসু সিংহ, কণিকা বন্দ্যোপাধ্যায়, তরুণ ভট্টাচার্য, দীনেশচন্দ্রের মতো লেখকেরা প্রবাসজীবনের বিচিত্র অভিজ্ঞতাকে সাহিত্যের রূপ দিয়েছেন।

তাঁদের অনুরণন শুধু ব্যক্তিগত নয়—তা হয়ে উঠেছে সম্মিলিত এক প্রবাসী চেতনার প্রতিফলন। তাঁদের ভাষা-নির্ভর আত্মপরিচয় একদিকে প্রবাসের সীমানা পেরিয়ে বিশ্বজনীন মানবীয় অভিজ্ঞতার অংশ হয়ে উঠেছে, অন্যদিকে বাংলাভাষা ও সাহিত্যকে নতুন পাঠকসমাজে পৌঁছে দেওয়ার দায়িত্বও কাঁধে তুলে নিয়েছে। সাহিত্যিক সৃষ্টির পাশাপাশি তাঁরা প্রবাসে বাংলা ভাষা শিক্ষা, পত্র-পত্রিকা সম্পাদনা, সাহিত্যচর্চা, সাহিত্যসভা ইত্যাদির মাধ্যমে ভাষার অস্তিত্ব টিকিয়ে রাখার নিরন্তর প্রয়াস চালিয়ে গেছেন।

আজকের বিশ্বায়নের যুগে ভাষা ও সাহিত্যের চর্চা যেমন আর সীমানা মানে না, তেমনি প্রবাসে বসে বাংলা সাহিত্যে অবদান রাখা লেখকেরাও আর প্রান্তিক কেউ নন—তাঁরা এই সাহিত্যেরই সমান গুরুত্বপূর্ণ নির্মাতা। তাঁদের লেখার মাধ্যমেই বাংলা সাহিত্য আন্তর্জাতিক অভিধান পেয়েছে, পেয়েছে নতুন ভাষা, নতুন দৃষ্টিভঙ্গি এবং নতুন পাঠক।

এই আলোচনার শেষে বলা যায়—বাংলা সাহিত্যের জগতে প্রবাসীরা কেবল সহায়ক শক্তি নন, বরং তাঁরা একটি স্বতন্ত্র সাহিত্যমূল্যসম্পন্ন ধারার জনক। ভবিষ্যতের বাংলা সাহিত্যচর্চা প্রবাসী লেখকদের অবদানকে যত বেশি মূল্যায়ন ও গ্রহণ করবে, ততই ভাষা ও সংস্কৃতির পরিসর সমৃদ্ধ হবে।

প্রবাসী লেখকদের কলমে উঠে আসা সেই শেকড়-স্মৃতি, পরিচয়ের টানাপোড়েন, এবং নস্টালজিয়াই ভবিষ্যতের বাংলা সাহিত্যকে আরও আন্তর্জাতিক, গভীর ও বহুমাত্রিক করে তুলবে।

উপসংহারের শেষে সংযুক্ত করার জন্য রবীন্দ্রনাথ ঠাকুরের উপযুক্ত ও প্রাসঙ্গিক কয়েকটি বিশেষ উক্তি দেওয়া হলো। এই উদ্ধৃতিগুলি ভাষা, জাতিসত্তা, স্মৃতি, সাংস্কৃতিক আত্মপরিচয়, ও বিশ্বমানবতার ভাবনার সঙ্গে সামঞ্জস্যপূর্ণ — যা প্রবাসী সাহিত্যিকদের চেতনার সঙ্গে গভীরভাবে সম্পর্কিত।

"আমি আমার চেতনার গভীরে অনুভব করি, আমি একটি জাতির সন্তান। কিন্তু সেই জাতিকে আমি সমস্ত মানবজাতির একটি সুরের সঙ্গে মেলাই।"— জাতীয়তাবাদ প্রবন্ধ|[22] এই উক্তিটি বিশ্বজনীনতা ও স্বজাত্যবোধের দ্বৈত সেতুবন্ধনের কথা বলে, যা প্রবাসী লেখকদের আত্মপরিচয়ের দ্বন্দ্বেও প্রতিফলিত।

"ভাষার মধ্যে মানুষের আত্মা বাস করে। ভাষাহীন জাতি আত্মাহীন জাতি।"— সাহিত্য ও ভাষা বিষয়ক বক্তৃতা, শান্তিনিকেতন|[23] প্রবাসে থেকেও বাংলা ভাষা ও সাহিত্যের চর্চা যে আত্মার চর্চা, তা এই উদ্ধৃতি মনে করিয়ে দেয়|

"বিশ্ব যখন এক নিকটে আসে, তখন নিজের জাতি ও ভাষার সত্য রূপ স্পষ্ট করে জাগে।"

— বিশ্বপরিচয় |[24]

এই ভাবনাটি প্রবাসী জীবনের অভিজ্ঞতার সঙ্গে মিল খায়—যেখানে দূরত্বে থেকেও শিকড় আরও বেশি স্পষ্ট হয়। এই সকল চিন্তার আলোকে বলা যায়, প্রবাসে থাকা বাংলাভাষী সাহিত্যিকেরা রবীন্দ্রচিন্তার উত্তরসাধক — তাঁরা শেকড়ে প্রোথিত থেকেও ডালপালা মেলেছেন পৃথিবীর আকাশজুড়ে। তাঁদের কলমে রবীন্দ্রনাথের এই দর্শনই যেন পুনরায় জীবন্ত হয়ে ওঠে —

"সকল দেশের তরে, সকল মানুষ তরে, একটি হৃদয় জাগাও হে প্রভু!" | _"সভ্যতার সংকট"[25]||

গ্রন্থসূচি

1)'একটি ফিল্মের কাহিনি', একটি প্রবন্ধ সংকলন, আনন্দ প্রকাশন।

2) সাক্ষাৎকার: 'রায়এন্ড রায়', আনন্দ পাবলিশার্স।

3) ‘কবিতার কথা’, ১৯৪২।
4) ‘নির্বাচিত প্রবন্ধ’, খণ্ড ২।
5) নীললোহিত সিরিজ, ‘সেই সময়’।
6) ‘প্রবাসের দিনগুলো’, রবিবার সাহিত্য সংখ্যার প্রবন্ধ।
7) ‘প্রবাসে নারী’, সাহিত্য পত্রিকা সাঁঝবাতি, কানাডা, ২০১৫।
8) ‘আধভাঙা জানালা’, কাব্যগ্রন্থ।
9) ‘এই দূর থেকে’, কাব্যগ্রন্থ, নিউ জার্সি, ২০০৯।
10) ‘ভাষাহীন বিকেল’, ব্যক্তিগত প্রবন্ধ।
11)” চল্ চল্ চল্” কবিতার ভূমিকা, ১৯৩০।
12) বক্তৃতা, মালয়েশিয়া সফর ,সংকলন- বিদ্রোহীর বিদেশযাত্রা, বাংলা একাডেমি।
13) গল্প — ‘তালতলির নিচে’।
14) সাক্ষাৎকার, দেশ পত্রিকা, ২০০১|
15) ‘প্রবাসী পাঠশালা’, প্রবন্ধ, বঙ্গদর্শন – প্রবাস সংখ্যা, ২০১৪।
16) উৎস: Bangla in Britain, London Bengali Writers' Forum, ১৯৯৫।
17) অমর সেন (Amar Sen)_ "– "পাথরের পাঁজর"
18) সঞ্জীব বক্সী (Sanjeeb Bakshee)_ "স্মৃতির পাতায় রাঁচি"|
19) মালবিকা রায় (Malabika Roy)_ "শব্দের শরীর" |
20) সুব্রত দে (Subrata Dey)_ "কয়লার দেশে"|
21) দেবাশিস মজুমদার (Debashish Majumdar)_ "পৃথিবীর পাশে বসে" |
22) রবীন্দ্রনাথ ঠাকুর (Rabindranath Tegore)—“ জাতীয়তাবাদ” প্রবন্ধ|
23) রবীন্দ্রনাথ ঠাকুর (Rabindranath Tegore)— সাহিত্য ও ভাষা বিষয়ক বক্তৃতা, শান্তিনিকেতন |
24) রবীন্দ্রনাথ ঠাকুর (Rabindranath Tegore)—“ বিশ্বপরিচয়” |
25) রবীন্দ্রনাথ ঠাকুর (Rabindranath Tegore)— _"সভ্যতার সংকট" |

শেষ